श्री नारायण पण्डित लिखित हितोपदेश भारत के प्राचीन लोक-साहित्य का अमूल्यरत्न है। संसार के साहित्य में पशु-पक्षी जीवन की लोक-कथाओं का श्रीगणेश हितोपदेश द्वारा ही हुआ। संस्कृत के हितोपदेश की टीकाएं केवल परीक्षार्थियों की गुत्थी ही सुलझा सकीं, सर्वसाधारण उनसे विशेष लाभ न उठा सके। इसीलिये मेरे मन में सरल, सुबोध भाषा में इसके रूपान्तर करने की इच्छा हुई।

कई महानुभाव हितोपदेश और पंचतन्त्र आदि ग्रन्थों को पशु-पक्षियों की कल्पित कथायें कहकर उपहास की दृष्टि से देखते हैं। वे यह अनुभव नहीं करते कि अन्य चराचर जगत् की तरह पशु-पक्षियों के समुदाय भी प्रकृति के ही अंग हैं। पक्षियों का नियत समय पर प्रातः उठना, कठोर परिश्रम द्वारा नीड़ बनाना, कोकिल का मधुर संगीत, कौए की चैतन्यता और खरगोश का चातुर्य क्या हमें शिक्षा नहीं देता? महापुरुषों का कथन है कि जहाँ से भी कोई शिक्षा मिले, ग्रहण करलो।

इस रूपान्तर में हितोपदेश के भावपूर्ण, गूढ़ श्लोकों को छोड़ा न

जा सका। उन्हें कहीं-कहीं पर कथोपकथनों के रूप में अथवा कहीं-कहीं उनके अंशों को उसी रूप में उद्धृत कर दिया गया है। हाँ, उनका बृहत् अनुवाद करके पुस्तक का आकार नहीं बढ़ाया गया। मुख्य कथा के तारतम्य को शृंखलाबद्ध रखने का भी प्रयास किया गया है। आशा है, पाठकगण इसकी शिक्षाप्रद और मनोरंजक कथाओं से अवश्य लाभ उठायेंगे।

आमुख

भागीरथी के पवित्र तट पर पटना नामका एक नगर है। किसी समय इस नगर पर राजा सुदर्शन राज्य करता था। उसकी राजसभा में किसी विद्वान् ने इन श्लोकों को पढ़कर सुनाया—

अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्,
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः।
यौवनं, धन सम्पत्तिः, प्रभुत्वमविवेकता,
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

"अर्थात् शास्त्र मनुष्य के नेत्र हैं। इन नेत्रों की सहायता से वह वस्तु का यथार्थ ज्ञान ही नहीं, परोक्ष ज्ञान भी कर लेता है। इनके बिना आँखोंवाला आदमी भी अन्धा ही रहता है।

यौवन, धन, अधिकार और अविवेक, इनमें से प्रत्येक दुर्गुण मनुष्य को पाप कर्म में गिरा सकता है; जिसके पास ये चारों

हाँ वह पाप के कौन से गर्त में गिरेगा—इसका अनुमान भी कठिन है।"

राजा सुदर्शन ने जब इन श्लोकों को सुना तो उसे अपने मूर्ख पुत्रों का ध्यान आगया। ये पुत्र मूर्ख होने के साथ-साथ व्यसनी भी थे। राजा सोचने लगा—कई कुपुत्रों से तो अच्छा है कि एक ही पुत्र हो, किन्तु गुणी हो। कुपुत्रों की अधिक संख्या भी आकाश के अगणित तारों की तरह निरर्थक रह जाती है। एक ही सुपुत्र चन्द्रमा की भांति अकेला ही कुल को उज्ज्वल बना देता है। पर इन राजकुमारों में तो कोई भी सुपुत्र नहीं।

विचारों के इस भँवर में उसका सिर चकरा गया। और अन्त में उसने निश्चय किया कि जिस तरह भी हो सकेगा, वह अपने पुत्रों को नीतिज्ञ और विद्वान् बनाएगा।

राजा सुदर्शन ने अगले दिन एक सभा बुलाई। पटना के अतिरिक्त अन्य देशों के विद्वान् भी उसमें पधारे। राजा ने सब विद्वानों का अभिनन्दन करते हुए कहा—

"विद्वानो, मुझे केवल अपने पुत्रों की चिन्ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये पुत्र मेरे वंश को कलंकित करेंगे। संसार में उसी पुत्र का जन्म लेना सफल होता है जो अपने वंश की मान-मर्यादा बढ़ाए। निरर्थक पुत्रों से क्या लाभ? कोई विद्वान् मेरे मूर्ख पुत्रों को भी विद्वान् बना दे तो मैं उसका उपकार मानूँगा। इस कार्य को पूरा करने के लिए मैं छः मास का समय देता हूँ।"

सभा में सन्नाटा छा गया। किसी भी अन्य विद्वान् में राजपुत्रों को इतने थोड़े समय में राजनीतिज्ञ बना देने की सामर्थ्य नहीं थी। केवल विष्णुशर्मा नामका एक विद्वान् अपने आसन से उठा और बोला :—

"राजन्, मैं वचन देता हूँ कि छः महीने के अन्दर ही अन्दर राजपुत्रों को राजनीतिज्ञ बना दूँगा।"

राजा ने अपने पुत्रों को विष्णुशर्मा के साथ विदा किया। विष्णुशर्मा ने इन राजपुत्रों को जिन मनोरंजक कहानियों द्वारा राजनीति और व्यवहार-नीति की शिक्षा दी, उन कथाओं और नीति-वाक्यों के संग्रह को ही 'हितोपदेश' कहा जाता है।

इस कथा-संग्रह के प्रथम भाग को 'मित्रलाभ' का नाम दिया गया। पहले उस भाग की प्रथम कथा कहते हैं।

पहला खण्ड—

असाधना वित्तहीना बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः ।
साधयन्त्याशु कार्याणि काककूर्ममृगाखुवत् ।

. . . .

अतुल धन, साधन के बिना भी बुद्धिमान लोग
मैत्री के बल पर अपना कार्य पूरा कर लेते हैं ।

. . . .

इस खण्ड की कथा-सूची

१.

मित्रलाभ

न मातरि, न दारेषु, न सोदर्ये, न चात्मजे ।
विश्वासस्तदृशः पुंसां यादृग् मित्रे स्वभावजे ॥

. . . .

मनुष्य को माता, पत्नी, पुत्र और भाई में भी उतना विश्वास नहीं होता जितना स्वाभाविक मित्र में होता है।

. . . .

गोदावरी के तट पर सेमर का एक विशाल वृक्ष था। उसकी शाखाओं पर भांति-भांति के पक्षी रहते थे। उसी वृक्ष पर लघुपतनक नामका एक कौवा भी रहता था। एक दिन प्रातःकाल उसे एक शिकारी दिखाई पड़ा। उस शिकारी को देखकर वह ऐसे डरा मानो

उसीका काल मनुष्य-रूप में आ रहा हो। वह सोचने लगा—यह अपशकुन आज न जाने क्या अनर्थ करेगा ?

शिकारी अपने मार्ग पर बढ़ता ही गया। लघुपतनक भी शिकारी का भेद जानने के लिये गुप्त रूप से उसके पीछे-पीछे चल दिया।

उसने देखा, शिकारी कुछ दूर चलकर एक वृक्ष के नीचे ठहर गया। उसने अपनी पोटली खोली और कुछ चावलों को पृथ्वी पर बिखेर दिया। फिर जाल फैलाया और पक्षियों के फँसने की प्रतीक्षा में पास ही छिपकर बैठ गया।

थोड़ी ही देर बाद कबूतरों का सरदार चित्रग्रीव, सपरिवार उड़ता हुआ उसी मार्ग से निकला। वहाँ पृथ्वी पर बिखरे चावलों को देखकर कबूतर ठहर गये और चावल खाने को लपके। सरदार चित्रग्रीव उन कबूतरों में सबसे अधिक चतुर था। उसने कबूतरों से कहा—

"साथियो, इस निर्जन वन में चावलों के दाने देखकर मुझे विस्मय होता है। अवश्य कुछ दाल में काला है। हमें यही उचित है कि हम इन को जैसे का तैसा छोड़ दें और आगे बढ़ें। कहीं लेने के देने न पड़ जाएँ।"

"यह नहीं हो सकता!" सब कबूतर एकही स्वर में बोल उठे—

"परोसी हुई थाली से कैसे मुँह मोड़ा जाए ?"

एक और कबूतर ने भी चित्रग्रीव का समर्थन करते हुए कहा—

"भाइयो, मैं फिर कहता हूँ कि इन दानों से दूर ही रहना चाहिए। कहीं लोभ में फँसकर हमारा भी वही हाल न हो जो लोभ के कारण एक राहगीर का हुआ था।"

"राहगीर की क्या कथा है ?" कबूतरों ने पूछा।

चित्रग्रीव ने राहगीर की कथा सुनाई—

२.

लोभ बुरी बला है

"लोभः पापस्य कारणम्"

. . . .

सब अनर्थों का मूल लोभ है।

. . . .

साथियो ! एक दिन मैं दक्षिण के वनों में भ्रमण कर रहा था। वहाँ मैंने एक तालाब के किनारे बूढ़े व्याघ्र को बैठे देखा। कहने को तो वह व्याघ्र था, पर उसने एक हाथ में कुशाएँ ले रखी थीं; दूसरे हाथ में सोने का कंगन। उसकी तापसी मुद्रा देखकर मुझे हँसी आ गई। पर दूसरे ही क्षण मैं गम्भीर हो गया। मैं सोचने लगा—'यह व्याघ्र आज अवश्य कोई न कोई नया गुल खिलायेगा।'

सरोवर के पास ही एक पगडंडी थी। आने-जानेवालों का वहाँ ताँता लगा था। व्याघ्र पथिकों को सम्बोधित करके कह रहा था—"पथिको ! मैं आज कुछ दान करना चाहता हूँ। मेरे पास सोने का कंगन है। जो चाहे इसे ले सकता है।"

लोग उसकी ओर देखते और उसकी लम्पटता पर हँसकर

आगे का रास्ता नापते। इतने में एक लोभी पथिक भी उसी रास्ते से निकला। व्याघ्र ने उसे भी निमन्त्रण दिया। सोने के कंगन का नाम सुनकर पथिक सोचने लगा—'मेरा आधा जीवन बीत गया। अभी तक मैं अपनी पत्नी के लिए ऐसा सुन्दर कंगन नहीं बनवा पाया। अगर किसी तरह यह कंगन मुझे मिल जाये तो शेष जीवन सुख पूर्वक बीत सकता है।' यह सोच वह वहीं खड़ा होगया। उसकी विचार-धारा ने करवट बदली। वह फिर सोचने लगा—'कहीं अमृत में विष का मेल तो नहीं? ऐसा न हो कि कंगन लेता-लेता अपने प्राण ही दे दूँ।'

दूसरे ही क्षण वह फिर सोचने लगा कि धन भी तो खतरे में पड़कर ही मिलता है। वह इसी उधेड़बुन में लगा हुआ था कि व्याघ्र ने फिर अपने वाक्यों को दुहराया। लोभ और भी तीव्र हो उठा। पथिक व्याघ्र से बोला—"व्याघ्र! तुम्हारा कंगन कहाँ है?"

व्याघ्र ने कंगन को घुमा-फिराकर दिखा दिया। पथिक फिर बोला—

"यह तो ठीक है कि तुम्हारे पास कंगन है, पर तुम्हारे जैसे हिंसक पशु पर विश्वास कैसे किया जाए?"

"हे भोले पथिक!" व्याघ्र ने महान् परोपकार एवं विरक्त भाव से कहा—"आज से कुछ समय पूर्व जब कि मैं भी पूर्ण युवा था, अन्य पशुओं की भांति पापी था। मैंने अगणित मनुष्यों और पशुओं को मारा। इसका दण्ड मुझे यह मिला कि मैं वंश-हीन

हो जाती है। कबूतरों का उन दानों पर बैठना था कि शिकारी ने जाल समेट लिया। तब सब कबूतर जाल में फँस गये। सब के सब कबूतर चित्रग्रीव की सराहना करने लगे। चित्रग्रीव ने फिर सबको समझाते हुए कहा—"यह समय लड़ने और झगड़ने का नहीं। अब तो जिस प्रकार भी हो सके छूटने का उपाय करना चाहिए।" कुछ क्षणों के लिए कबूतरों ने पंख फड़फड़ाने बन्द कर दिये और उपाय सोचने लगे।

कबूतरों को जाल में फँसा देखकर शिकारी अपने स्थान से उठा और कबूतरों की ओर बढ़ चला। शिकारी को अपनी ओर आते देखकर कबूतरों के प्राण सूखने लगे। तभी चित्रग्रीव बोला—

"साथियो, आपत्ति कभी भी घबराने से दूर नहीं होती। हमें आलस्य का त्याग करना चाहिये और 'छोटी-छोटी वस्तुओं के संगठन से भी कार्य सिद्ध हो जाते हैं' की नीति के अनुसार एक साथ जाल लेकर उड़ चलना चाहिये।"

चित्रग्रीव की बात का सब कबूतरों ने समर्थन किया और वे सब जाल समेत उड़ चले। कबूतरों को जाल समेत उड़ता देखकर शिकारी के आश्चर्य की सीमा न रही। वह भी उनके पीछे-पीछे भागा और सोचने लगा कि जब इनमें फूट पड़ेगी, तब ये स्वयं पृथ्वी पर गिर पड़ेंगे। पर कबूतर उड़ते ही गये। शिकारी भागते-भागते थक गया। कबूतर भी उसकी पहुँच से बाहर होगए थे। निराश होकर शिकारी हाथ मलता हुआ वापस मुड़ गया।

शिकारी के लौट जाने पर कबूतरों ने अपने सरदार चित्रग्रीव

से पूछा—"स्वामिन् ? अब क्या करना चाहिये ?"

चित्रग्रीव सोचने लगा—आपत्ति में माता, पिता और मित्र यह तीन ही स्वाभाविक सहायक होते हैं और शेष तो अपनी कार्यसिद्धि के लिए ही हित करते हैं। माता-पिता का तो अब पता नहीं। हाँ, मित्र कई हैं। तो फिर किसके पास चलना चाहिये। इसी तरह थोड़ा समय विचार करने पर उसे अपने परम मित्र हिरण्यक चूहे का ध्यान आया। वह बोला—

"मित्र, आओ हम अपने मित्र हिरण्यक में पास चलें। वह अपने तेज़ दाँतों से इस जाल को पल-भर में काट डालेगा।"

सब कबूतर हिरण्यक के बिल के पास जाकर उतर पड़े। चित्रग्रीव के बुलाने पर हिरण्यक अपने बिल से बाहर निकला। अपने मित्र को आपत्ति में देख वह बहुत दुखी हुआ और बोला—

"मित्र चित्रग्रीव ! यह जाल तो बहुत बड़ा है और मैं एक छोटा-सा चूहा हूँ। इसलिये सारे जाल को काटना तो मेरी शक्ति से बाहर की बात है। हाँ, मैं पहले तुम्हारे बन्धन काटता हूँ। उसके बाद तुम्हारे साथियों के बन्धन यथाशक्ति काट दूँगा।"

चित्रग्रीव बोला—"मित्र, यह अन्याय है, अपने आश्रितों की चिन्ता न करके पहले अपना उद्धार कराना स्वार्थ है। तुम बारी-बारी से सबके बन्धन काटते चलो, जब मेरी बारी आजाये तब मेरे बन्धन भी काट देना।"

हिरण्यक बोला—"मित्र, मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। तुम

चिन्ता न करो। जब तक मेरे दाँत नहीं टूटते, बन्धन काटता ही रहूँगा।"

हिरण्यक ने धीरे-धीरे सब कबूतरों के बन्धन काट दिये। बन्धन-मुक्त होकर सब कबूतर उड़ गये।

× × × ×

लघुपतनक हिरण्यक और चित्रग्रीव की इस मैत्री से अत्यधिक प्रभावित हुआ। वह भी हिरण्यक के बिल के पास गया और बोला—

"मित्र हिरण्यक ? तुम धन्य हो ! तुम्हारे जैसे मित्र संसार में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते ? मैं चाहता हूँ तुम मुझे भी अपना मित्र बना लो।"

"तुम कौन हो जो मित्र बनना चाहते हो ?" हिरण्यक बिल के भीतर से ही बोला।

"मैं लघुपतक नाम का कौवा हूँ।"

"चूहे और कौए की कैसी मित्रता ? मैं तुम्हारा भक्ष्य हूँ और तुम मेरे भक्षक ! आग और पानी भी क्या कभी एक साथ रह सकते हैं ? मुझे ऐसी मित्रता नहीं करनी। कहीं मेरा भी वही हाल न हो जो हिरण और गीदड़ का हुआ था।" हिरण्यक ने कहा।

"वह कैसे ? मैं भी सुनना चाहता हूँ मित्र ! मुझे भी हिरण और गीदड़ की कहानी सुनाओ।" लघुपतक ने प्रार्थना की।

हिरण्यक ने तब यह कथा सुनाई

३.

करनी का फल

वर्जयेत्तादृशं मित्रं विष कुम्भं पयोमुखम् ।

सामने दूध-सा मधुर बोलनेवाले और पीठ पीछे विष भरी छुरी मारनेवाले मित्र को छोड़ देना चाहिए।

मगध देश में चम्पारन नाम का विस्तृत वन है। किसी समय उस वन में एक कौआ और एक हिरण रहा करते थे। दोनों घनिष्ट मित्र थे। हिरण स्वेच्छा से वन में निश्चिन्त भ्रमण करता था। एक दिन वह मस्त होकर घूम रहा था कि उसे एक सियार ने देख लिया। हिरण के पुष्ट अंग और माँसल शरीर को देखकर सियार के मुंह में पानी भर आया। वह जानता था कि हिरण के साथ-साथ दौड़ना या उससे लड़ना संभव नहीं, अतः नीति से काम लेना चाहिये। इसलिए हिरण के पास जाकर वह बोला—

"मित्र, आप सकुशल तो हैं!"

"तुम कौन हो? मैं तो तुम्हें पहचानता नहीं!" हिरण ने आश्चर्य से पूछा।

"मित्र, मैं क्षुद्रबुद्धि नाम का सियार हूँ। इस विशाल वन में मेरा कोई भी साथी नहीं। आज आपको देखकर प्रतीत होता है मुझे मेरा अभीष्ट मिल गया।

"यह तो मेरा सौभाग्य है।" हिरण ने नम्रता पूर्वक कहा— "मेरे लिये कोई सेवा हो तो कहें।"

"सेवा ! मैं तो बस यही चाहता हूँ कि आपकी मित्रता का सौभाग्य प्राप्त करूँ और सदा आपके ही साथ रहूँ।"

इतना कहकर गीदड़ हिरण के साथ हो लिया। दोनों दिनभर हिलमिलकर खेलते रहे। सायंकाल गीदड़ भी हिरण के साथ-साथ उसके घर की ओर गया। दोनों अभी वृक्ष के नीचे पहुँचे ही थे कि हिरण के परम मित्र कौए ने हिरण से पूछा—

"मित्र, आज यह दूसरा कौन है ?"

"यह सियार है। हम लोगों से मित्रता करना चाहता है।"

"मित्र ! जिसके कुल, निवास, शील, स्वभाव आदि का पता न हो, उसे मित्र नहीं बनाना चाहिये। नीति कहती है—

"अज्ञात कुल शीलस्य वासो देयो न कस्यचित्"

जिसके कुल अथवा शील-स्वभाव का पता न हो उसे कभी भी अपने साथ रहने की आज्ञा नहीं देनी चाहिये। अन्यथा इस प्रकार प्रत्येक पर विश्वास करनेवाला उसी भांति मारा जाता है, जैसे बिलाव के दोष से बेचारा गिद्ध मारा गया था।"

हिरण बोला—"वह कैसे ?"

कौए ने तब बिलाव और गिद्ध की कथा सुनाई।

४.

पहचान बिना मित्र न बनाओ

अज्ञात कुल शीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।

. . . .

जिसके कुल-शील और स्वभाव का पता न हो
उसे कभी भी निवास नहीं देना चाहिए ।

. . .

गंगा जी के तट पर गिद्धौर नामका पर्वत है । उस पर एक लम्बा-चौड़ा पाकड़ का वृक्ष था । यह वृक्ष बहुत पुराना था । इसके कोटर में जरद्गव नाम का गिद्ध रहता था । जरद्गव इतना वृद्ध हो चुका था कि वह अपने लिये भोजन आदि का भी प्रबन्ध नहीं कर पाता था । उसकी दीन दशा पर दया करके उस वृक्ष पर रहने वाले पक्षियों ने उससे कहा—

"तुम हमारे चले जाने के बाद हमारे पुत्रों की देख-रेख किया करो, हम तुम्हें भोजन दिया करेंगे । तुम्हें भोजन मिल जाया करेगा और हमारे बच्चों की देख-रेख होगी ।"

जरद्गव ने यह बात प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करली और दोनों का जीवन उसी भांति चलता रहा ।

एक दिन पक्षियों के शावकों को खाने के लिए एक बिलाव उन पर झपटा। पक्षी बिलाव के भय से चिल्लाने लगे। जरद्गव ने उनका क्रन्दन सुना तो सचेष्ट होकर बोला—

"कौन है ?"

बिलाव को यह नहीं पता था कि उनका कोई पहरेदार भी यहाँ बैठा है। वह हक्का-बक्का रह गया। भय से वह कांपने लगा। परन्तु थोड़े ही समय बाद वह सजग हो गया। उसने सोचा—तब तक भय से नहीं डरना चाहिये जब तक वह सामने न आजाये। जब वह सामने आजाये, तब जो कुछ बन पड़े, उसे दूर करने के लिये करे। इस समय अगर मैं भागता हूँ तब भी मैं पक्षियों को खा तो सकता नहीं। अतः कुछ सोचकर दीर्घकर्ण बिलाव जरद्गव की ओर बढ़ा और पास जाकर बोला—

"महात्मन् ! प्रणाम हो।"

"कौन हो तुम, जो मुझे प्रणाम कर रहे हो ?"

"भगवन्, मैं दीर्घकर्ण नाम का बिलाव हूँ।" बिलाव का नाम सुनना था कि जरद्गव की आँखें खुल गईं। वह गरजकर बोला—

"तुम यहाँ क्यों आए हो ? भाग जाओ, नहीं तो मैं तुम्हें अभी मार डालूँगा।"

"पहले जो मैं कहता हूँ, कृपया आप उसे सुन लें। तदनन्तर आप जैसा चाहें करें। नीति कहती है कि किसी से केवल विजातीय होने के कारण वैर नहीं करना चाहिये। उसका व्यवहार देखने

के उपरान्त वह जिस योग्य हो उसके साथ वैसा ही व्यवहार करे।

"कहो, अपने आने का प्रयोजन कहो।"

दीर्घकर्ण की बात सुनकर जरद्गव कुछ शान्त हुआ और बोला—

"मैं यहीं गंगा जी के पावन तट पर निवास करता हूँ। आज-कल प्रातःकाल स्नान आदि करने के उपरान्त थोड़ा-सा फलाहार ग्रहण कर लेता हूँ। तत्पश्चात् पाठ-पूजा में संलग्न हो जाता हूँ। इसी भांति मैंने आजकल चान्द्रायण व्रत धारण किया हुआ है।"

कुछ रुककर दीर्घकर्ण फिर बोला। "मुझे इसी तरह यहाँ रहते काफी समय बीत गया है। जब से मैं इस वन में आया हूँ अनेक पक्षियों के मुँह से आपके ज्ञान तथा अध्ययन की प्रशंसा कई बार सुन चुका हूँ। मेरी कई दिनों से आप जैसे महात्माओं के साथ ज्ञान-चर्चा करके कुछ ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा थी। आज आप जैसे विद्या-वृद्ध एवं वयो-वृद्ध महानुभाव के दर्शन करके मुझे असीम शान्ति प्राप्त हुई। एक बात मैं फिर दुबारा कहूँगा कि मैं तो आपकी सेवा में कितनी श्रद्धा और विश्वास लेकर आया था। पर आप तो मेरे आते ही......

बीच में ही दीर्घकर्ण की बात काटकर जरद्गव बोला—"छोड़ो भी इस बात को।"

दीर्घकर्ण हँसते हुए बोला—"आप अब इसकी चिन्ता न करें। वह तो भ्रम था। आपका स्वभाव तो महान् व्यक्तियों जैसा है। महान् लोग वृक्ष की भांति होते हैं। जैसे कोई भी वृक्ष शरीर

काटने वाले लकड़हारे के आने पर अपनी छाया नहीं समेट लेता अपितु सब को सम भाव से देखता है। इसी भांति आपको तो शत्रु से भी वैर नहीं है। और फिर—

"निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।"

साधु लोग तो गुण रहित अज्ञानी पर भी दया करते हैं। यदि उनके पास धन नहीं तो न सही, मीठी बातों से ही वह अतिथि का सत्कार करते हैं। फिर आपके तो कहने ही क्या हैं?"

दीर्घकर्ण की बात सुनकर जरद्गव बोला—

"भाई, बात यह है कि बिलाव स्वभाव से मांस-भक्षी होता है। यहाँ तो उसके भक्ष्य पक्षी रहते ही हैं। अतएव सजग रहना पड़ता है।"

जरद्गव की बात सुनते ही पृथ्वी को छूकर अपने कान पकड़ते हुए बिलाव बोला—

'राम राम, मैं चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान कर रहा हूँ। धर्मशास्त्रों का मैंने भलीभांति अध्ययन किया है। शास्त्र के 'अहिंसा परमो धर्मः (अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है।) के सिद्धान्त को वर्षों से मानता आया हूँ। धर्म ही तो जीवन का सार है।

"एक एव सुहृद् धर्मः निधनेऽप्यनुयाति यः"

धर्म ही प्राणी का सबसे बड़ा बन्धु है जो कि मरने के बाद भी साथ नहीं छोड़ता!"

बिलाव के धर्म-वचनों को सुनकर गिद्ध को भी उस पर श्रद्धा होने लगी। उसने बिलाव को भी अपने ही साथ में रहने की आज्ञा दे

दी। बिलाव कुछ दिन तो शांत रहा और फिर धीरे-धीरे वह एक-एक करके पक्षियों के बच्चों को खाने लगा। वृक्ष के सब पक्षी अपने बच्चों को न पाकर रोते और विलाप करते, पर कारण नहीं जान पाते। एक दिन पक्षियों ने कोटर में पड़े पखों को देखा। अब वह और सतर्क होकर खोज करने लगे। बिलाव को जब पता चला तो वह नौ दो ग्यारह हो गया। पक्षियों ने कोई कारण न पाकर जरद्गव को ही दोषी समझ लिया और उसे मार डाला।

× × × ×

कौए के मुँह से इस कहानी को सुनकर गीदड़ आग बबूला होगया और बोला—

"काकराज, जब आपकी इस हिरण के साथ मित्रता हुई थी तब आप भी तो इसके लिये नए थे। अब आपका प्रेम क्यों बढ़ता ही जा रहा है? अभी हिरण ने मित्रता देखी ही कहाँ है?"

आपस के कलह को शान्त करने की इच्छा से हिरण ने उन दोनों को शान्त किया। तीनों उसी वन में आनन्द पूर्वक रहने लगे।

एक दिन एकान्त स्थान पाकर सियार हिरण से बोला—"मित्र अब यहाँ सूखे मैदान में कुछ भी नहीं रखा। यहाँ से कुछ दूरी पर लहलहाता हुआ एक अनाज का खेत है। चलो वहीं चलें।"

अब हिरण सियार के साथ उसी खेत में जाने लगा। ये वहाँ खाते और खेत का नाश भी करते। एक दिन खेत के मालिक ने तंग आकर खेत में जाल बिछा दिया। हिरण वहाँ चरने पहुँचा और जाल में फँस गया। उसे अपने ऊपर अब गुस्सा आ रहा था। वह

सोच रहा था कि यदि मैं अनाज के लोभ से नित्य प्रति यहाँ न आता तो कभी न फँसता। हिरण इस तरह सोच ही रहा था कि सियार उसी रास्ते से निकला। हिरण को जाल में फँसा देखकर वह उसके पास गया। अपने मित्र को आते देखकर हिरण को धैर्य बँधा। वह सोचने लगा—'अब यह अवश्य अपने तीखे दाँतों से जाल को काट डालेगा।' उसके पास आने पर हिरण उससे बोला—

"मित्र मैं जाल में फँस गया हूँ। तुम्हारे दाँत तो बहुत तीखे हैं। कृपा करके मेरे बन्धनों को काट दो।"

हिरण की बात सुनकर सियार ने जाल की ओर देखा और सोचा—यह तो बड़े मज़बूत जाल में फँसा हुआ है। अब यह किसी भी तरह नहीं छूट सकता। वह कुछ सोचकर बोला—

"मित्र, यह काम तो कोई कठिन नहीं था। पर, आज रविवार का दिन है और मेरा आज व्रत है। अगर मैं अपने दाँतों से ताँत के बने इस जाल को काटता हूँ तो व्रत खण्डित हो जाएगा। मुझे पाप भी लगेगा। हाँ, अगर तुम थोड़ा धैर्य रखो तो कल सुबह मैं आऊँगा और तुम्हारे देखते ही देखते इस जाल के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा।"

हिरण सियार का उत्तर सुनकर हैरान रह गया। उसे गीदड़ से स्वप्न में भी ऐसी आशा न थी। गीदड़ हिरण के सामने से एक ओर हो गया और थोड़ी दूर पर एक झाड़ी में छिपकर बैठ गया। उसके मुँह में बार-बार पानी आ रहा था। वह सोच रहा था कि कब खेत का स्वामी आए और मेरी कई दिनों की इच्छा पूरी हो।

इधर कौए ने जब हिरन को ठीक समय अपने स्थान पर नहीं पाया तो चिन्तित हो उठा। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद वह उसे खोजने निकला। कुछ दूर उड़ने पर उसने हिरण को जाल में फँसा देखा। कौवा हिरण के पास पहुँचा और बोला—

"मित्र, आज तुम्हारा परम मित्र कहाँ है ?"

हिरण—"कौन सियार ? उसका नाम मत लो। वह तो मुझे खा जाना चाहता है। उसी के छल से मेरी आज यह दशा हो गई है। अब कोई बचाव का रास्ता निकालो, दोनों विचार ही करते रहे कि सवेरा होगया। उसी समय कौवे ने दूर से ही देखा—खेत का स्वामी हाथ में लाठी लिए चला आ रहा था। अब कौए को एक उपाय सूझा, वह हिरण से बोला—

"मित्र, तुम साँस रोककर इस तरह लेट जाओ कि खेत का स्वामी तुम्हें मरा हुआ समझे। अपना पेट फुला लो, टाँगें अकड़ा लो। जैसे ही मैं बोलूँ, उठकर भाग जाना।" कौए की बात हिरण को बहुत ही पसंद आई। उसकी बात मान वह धरती पर लेट गया।

इतने में खेत का मालिक आया। जाल में हिरण को फँसा देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। पास जाकर उसने हिरण को बिल्कुल बेजान-सा देखा।

निश्चिन्त होकर उसने जाल समेटना प्रारम्भ कर दिया। जाल समेटते हुए वह हिरण से कुछ ही दूर गया था कि कौए ने ऊँचे स्वर में चिल्लाना शुरू कर दिया। हिरण कौए की पुकार सुनते ही

भाग खड़ा हुआ। बेजान से पड़े हिरण को भागते देख किसान ने डण्डा फैंककर मारा।

लेकिन वह डण्डा हिरण को न लगकर विश्वासघाती गीदड़ के सिर पर जा लगा। वह पापी अपने पाप से स्वयं ही मारा गया।

× × × ×

हिरण्यक फिर बोला—"इसलिए मैं कहता हूँ कि भक्ष्य और भक्षक में मित्रता हो ही नहीं सकती।"

लघुपतनक ने उत्तर दिया—"मित्र! मित्र को खाने से किसी का पेट सदा के लिए तो भर नहीं जाता। फिर तुम तो इतने छोटे हो कि मेरा एक समय का आहार भी नहीं बन सकते।"

हिरण्यक—"आप हमारे शत्रुपक्ष के हैं। शत्रुपक्ष का प्राणी कभी भी भलाई नहीं कर सकता। पानी कितना भी गरम क्यों न हो आग को बुझा ही देता है।

हिरण्यक के बारबार इन्कार करने पर भी लघुपतनक नहीं माना और बोला—

"मित्र, तुम जो कुछ कह रहे हो, वह सब मैं पहले ही सुन चुका हूँ। वास्तव में मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि या तो तुम्हारे साथ मित्रता ही करूँगा अन्यथा आत्महत्या कर लूँगा। मुझे इस बात का दुःख नहीं कि आप मुझ से रूखेपन से बातें कर रहे हैं। मैं जानता हूँ कि सज्जन लोग नारियल के फल के समान होते हैं। ऊपर से तो वह रूखे-सूखे दिखाई देते हैं और अन्दर से मीठे

और सरस होते हैं, बेर की भाँति नहीं कि जिसके ऊपर तो मिठास होता है, पर अन्दर गुठली होती है। इसके साथ-साथ सज्जनों में एक गुण और भी होता है। वे लोग प्रीति के टूटने पर भी सम्बन्ध नहीं तोड़ते। आप में ये सब गुण हैं। आपके अतिरिक्त आप जैसा मित्र मुझे और कहाँ मिलेगा? अत: हे मित्रवर! आप बिल से बाहर निकलकर मुझ से मैत्री करो।

हिरण्यक लघुपतनक के श्रद्धायुक्त वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने बिल से बाहर निकल आया। हिरण्यक लघुपतनक से गले मिलते हुए बोला—

"मित्र, तुम्हारी दृढ़ता और मित्र-प्रेम को देखकर मैं अधिक प्रसन्न हूँ। कहीं दुष्ट से मित्रता न कर बैठूँ, इसलिए मैंने इतने दोष गिनाए। आओ, अब हम सदा मित्र रहने की प्रतिज्ञा करें।"

दोनों ने आपस में जीवन भर मित्र रहने की प्रतिज्ञा की।

कुछ दिनों के बाद एक दिन लघुपतनक हिरण्यक से बोला—

"मित्र! इस वन में अब कई दिनों से खाना भी नहीं मिलता। सोचा है इस वन को छोड़कर अब किसी दूसरे वन में चला जाऊँ।"

हिरण्यक बोला—"जिस प्रकार अपने स्थान से टूटे हुए दाँत, केश और नाखून अच्छे नहीं लगते। उसी प्रकार अपने स्थान से भ्रष्ट प्राणी भी सुख नहीं पाता।"

लघुपतनक—"यह तो तुम ठीक कहते हो। पर जिस स्थान पर भोजन ही प्राप्त न हो, उस स्थान पर रहने से क्या लाभ?

फिर भाई, मैं तो पुरुषार्थ पर विश्वास करता हूँ। पुरुषार्थी के लिए अपने पराये में कुछ भेद नहीं। वह तो जहाँ जाता है अपने पुरुषार्थ से ही सफलता प्राप्त करता है। परदेश भी उसके लिए अपना ही देश हो जाता है। दण्डकारण्य में कर्पूरगौर नामक एक सरोवर है। इसमें मन्थर नाम का एक कछुआ मेरा मित्र रहता है। वह केवल उपदेश करना ही नहीं जानता, स्वयं उस पर आचरण भी करता है। निश्चय ही वह वहाँ हमारा प्रेमपूर्वक स्वागत करेगा।"

दोनों वहाँ चलने को सहमत हो गये और शीघ्र ही मन्थर के निवास-स्थान पर पहुँच गये।

लघुपतनक बोला—"मित्र, हिरण्यक का विशेष सत्कार करो। क्योंकि इन जैसे प्राणी संसार में मिलने दुर्लभ हैं।

सत्कार के बाद मन्थर ने उससे पूछा—"मित्र, अपने नगर से चलकर इस निर्जन वन में आने का प्रयोजन बताओ।"

हिरण्यक ने तब अपने अनुभव की कथा सुनाई।

५.

धन-संचय का बुरा परिणाम

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य,
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।

. . . .

धन की केवल तीन ही गतियाँ होती हैं—दान, भोग और नाश। जो दान नहीं देता, भोग भी नहीं करता, उसके धन की तीसरी गति होती है। उसका धन नष्ट हो जाता है।

. . . .

चम्पक नामक नगर में संन्यासियों का एक मठ है। किसी समय उस मठ में चूड़ाकर्ण नाम का एक संन्यासी रहता था। वह भोजन से बचे हुए अन्न को खूंटी पर टाँगकर सोता। उसके सो जाने पर मैं उछल-कूदकर उस अन्न को खा लिया करता था। एक दिन उसका वीणाकर्ण नाम का एक मित्र उससे मिलने आया। वे दोनों आपस में बात-चीत करने लगे। भूख से व्याकुल होकर मैं भी उछल-उछलकर खूंटी पर टँगे भिक्षापात्र की ओर बढ़ने लगा। चूड़ाकर्ण वीणाकर्ण के साथ बात-चीत करने के साथ-साथ हाथ में फटा बाँस लेकर पृथ्वी पर मारकर बजाता जा रहा

था। यह देखकर वीणाकर्ण बोला—"मित्र, आज तुम मेरी बात ध्यान से क्यों नहीं सुन रहे। कारण क्या है?"

चूड़ाकर्ण—मित्र, क्या कारण बताऊँ? इस स्थान पर एक चूहा रहता है। यह सदा मेरे भिक्षापात्र में से भोजन चुरा लिया करता है।"

वीणाकर्ण ने खूंटी की ओर देखा और फिर बोला—

"यह छोटा-सा चूहा इतने ऊँचे स्थान पर उछलकर कैसे चढ़ जाता है, कोई न कोई इसका कारण अवश्य होगा। मेरे विचार में तो इस के बिल में धन का कोष है। उसकी गर्मी से यह इतना उछलता है।"

कुछ क्षण विचार करने के उपरान्त संन्यासी ने फावड़ा लेकर मेरे बिल को खोद डाला और उसमें जो कुछ भोजन अथवा मेरा धन-धान्य रखा था, ले लिया। धन छिन जाने के उपरान्त मैं धन की चिन्ता में इतना निर्बल होगया कि अपने भोजन के लिये भी पहिले की भांति उछल-कूद न सका। एक दिन धीरे-धीरे जा रहा था तो मुझे इस दीनदशा में देखकर चूड़ाकर्ण बोला—

"धन से प्राणी बलवान् होता है और धन से ही लोग उसे विद्वान् कहते हैं। इस पापी चूहे को ही देखो, आज धन न रहने के कारण साधारण चूहे की भाँति चल-फिर रहा है।"

चूड़ाकर्ण की बात सुनकर मैंने विचार किया—यह सत्य ही कहता है। प्राणी के हाथ, पांव, कान, नाक आदि वे ही इन्द्रियाँ होती हैं; उसी प्रकार की बुद्धि होती है, बेचारा पुरुष भी वही

होता है जो आज से पहिले था, परन्तु धन के न रहने पर वही प्राणी क्षण-भर में बदल जाता है। अब तो मेरा भी वही हाल है। अतः अब मेरा यहाँ रहना उचित नहीं। तो क्या मैं भिक्षा माँग कर अपना निर्वाह करूँ? यह भी असम्भव है। भिक्षा माँगकर खाने से तो भूखे ही मर जाना अच्छा है।

इसीभांति विचार करके मैंने लोभवश पुनः उसी भवन में घर बनाया। उसका फल भी पाया। मैं धीरे-धीरे चल रह था कि वीणाकर्ण ने उसी फटे हुए बाँस से मुझे पीटा। मार पड़ने पर मुझे हार्दिक खेद हुआ। उसी दिन मैंने निश्चय कर लिया कि कभी भी आशा का सहारा नहीं लूँगा। सदा निराश रहकर ही परिश्रम करूँगा। अतः उसी दिन से मैं इस निर्जन वन में चला आया। कुछ समय के उपरान्त यह लघुपतनक नाम का मित्र मुझे भगवान् की कृपा से प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् लघुपतनक की कृपा से आज आप के दर्शन होगये।

मन्थर बोला—"मित्र, जो होना था वह तो हो चुका। आपने जो इतना अधिक सञ्चय किया, यह उसी का परिणाम है। आप सञ्चय न करते तो आपको उसके नाश का दुःख भी न होता। अर्थ का तो उपभोग या दान ही सर्वश्रेष्ठ उपयोग है। तुम्हारी ही भांति सञ्चय करने कारण एक गीदड़ की मृत्यु हो गई थी।"

हिरण्यक—"वह क्या कथा है?"

मन्थर—"सुनो!"

६.

थोड़ा संचय हितकर है

कर्त्तव्यः सञ्चयो नित्यं, कर्त्तव्यो नातिसञ्चयः

. . . .

सञ्चय करना तो युक्त है, पर अधिक सञ्चय नहीं करना चाहिये।

कल्याण नामक नगर में भैरव नाम का शिकारी रहता था। एक दिन शिकार खेलने के लिए अपने हाथों में धनुष-बाण लेकर वह वन की ओर निकल पड़ा। उसने वन में एक मृग को मारा और उसे अपने कन्धे पर रखकर चल दिया। मार्ग में उसने एक भयानक सूअर देखा। सूअर शिकारी की ओर बढ़ता चला आ रहा था। शिकारी ने उसी समय मृग को कन्धे से उतारा और तीर चलाकर सूअर को घायल कर दिया। क्रोध में भरकर सूअर भी शिकारी पर झपटा और अपने तीखे नाखूनों से उसने शिकारी का पेट फाड़ दिया। शिकारी वहीं पर गिर पड़ा। सूअर भी तीर लगने से कुछ समय तड़पकर मर गया। दोनों के इस युद्ध में पैरों के नीचे आकर एक साँप भी मर गया।

कुछ समय बाद दीर्घरात्र नाम का एक गीदड़ भी उसी रास्ते

से निकला। भूख से व्याकुल होकर वह इधर-उधर भटक रहा था। मरे हुए तीन प्राणियों को एक साथ देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। मन ही मन भाग्य की सराहना करते हुए विचार करने लगा—

"आज सौभाग्य से मुझे इतना अधिक आहार मिल गया है। इस भोजन से अब मैं निश्चिन्त होकर तीन मास तक निर्वाह कर सकूँगा। एक मास तक तो यह मनुष्य का शरीर मेरा निर्वाह करेगा। हिरण और सूअर को खाकर मैं दो मास तक आनन्द से निर्वाह करूँगा। सर्प और धनुष की डोरी एक एक दिन के लिये पर्याप्त होगी।"

यह विचारकर गीदड़ धनुष की डोरी को ही सबसे पहिले खाने लगा। बार-बार चबाने से धनुष की डोरी टूट गई और धनुष की नोंक सियार के तालू को छेदकर बाहर निकल आई।

मन्थर बोला—इसीलिए मैं कहता हूँ कि सञ्चय करना तो कोई बुरा नहीं, पर अधिक सञ्चय भी नहीं करना चाहिए।

× × × ×

मन्थर बोला—अच्छा, छोड़ो इन बातों को। अब हम तीनों यहाँ सुख-पूर्वक रहें और पिछली बातों को भुला दें। जिस प्रभु ने इस असार संसार का निर्माण किया है वह हमारा और अखिल विश्व का पालन भी करेगा।

इस प्रकार वहाँ रहते उन्हें पर्याप्त समय व्यतीत होगया। एक दिन एक हिरण व्याकुल होकर उसी मार्ग से भागता हुआ जा रहा था। उसे देखकर मन्थर पानी में घुस गया। हिरण्यक बिल में

घुस गया और लघुपतनक उड़कर वृक्ष की शाखा पर बैठ गया। कुछ क्षण बाद लघुपतनक ने ध्यान से दूर तक देखा। परन्तु जब उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया तो उसने फिर सब को बुला लिया।

हिरण के पास आ जाने पर लघुपतनक बोला—

"मित्र, तुम इतने व्याकुल क्यों हो रहे हो ?"

हिरण—मित्रो, मेरा नाम चित्राङ्ग है। मैं व्याध के भय से भागा-भागा फिर रहा हूँ।

कौआ—मित्र, इस निर्जन वन में तुम्हें किस व्याध का भय सता रहा है ?

हिरण—मित्र, कलिंग देश पर रुक्मांगद नाम का एक राजा राज्य करता है। वह आजकल दिग्विजय करने के लिये देश-देशान्तरों में भ्रमण कर रहा है। मैंने व्याधों के मुँह से अभी-अभी सुना है। कल प्रातःकाल वह इसी सरोवर के तट पर आकर अपना डेरा डालेगा। अतः हमें अभी से अपने बचाव का कोई न कोई उपाय अवश्य करना चाहिए।

कछुआ बोला—भैया, मैं तो किसी दूसरे तालाब में जाऊँगा।

चूहा और कौवा बोले—यह ठीक है।

बात काटते हुए हिरण बोला—ठीक तो है। पर कछुए को दूसरे तालाब में ले जाना भी कोई आसान काम नहीं। बेचारे के प्राणों पर आ बनेगी। इसकी रक्षा तो तालाब में ही हो सकती

है। स्थल में तो मरण अनिवार्य है। अतः कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे हम सब अपनी रक्षा कर सकें। क्योंकि उपायों के सहारे ही गीदड़ ने मदमस्त हाथी को भी दल-दल में ले जाकर मार दिया।

कौआ बोला—कैसे ?

हिरण बोला—

७.

युक्ति से कार्य लो

उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः ।

. . . .

जो कार्य बल अथवा पराक्रम से पूर्ण नहीं हो पाता, उपाय द्वारा वह सरलता से पूर्ण हो जाता है ।

. . . .

ब्रह्मारण्य में कर्पूरतिलक नाम का हाथी रहता था। उसके हृष्ट-पुष्ट शरीर को देखकर सियार सोचने लगे कि यदि किसी उपाय से इसको मार दिया जाए तो इसके शरीर से कई मास का भोजन प्राप्त हो सकता है। कुछ समय पश्चात् एक बूढ़े सियार ने प्रतिज्ञा की कि मैं उपायों द्वारा इस हाथी को मार डालूँगा। तत्पश्चात् वह सियार हाथी के पास गया और बोला—

सियार—महाराज, कृपया मेरी बात सुनें !

हाथी—तू कौन है ? कहाँ से आया है ?

सियार—महाराज, मैं सियार हूँ। समस्त वनवासियों ने परस्पर सलाह करके मुझे आपके पास भेजा है और कहा है कि

बिना राजा के समस्त वनखण्ड ही नहीं सुहाता। अतः आपको इस वन का राजा चुना जाए और आज ही राज्याभिषेक कर दिया जाए। मैं आपसे स्थान पर पधारने का अनुग्रह करने आया हूँ। लग्न का समय बहुत ही निकट है, अतः कृपया आप शीघ्र ही चलें।

सियार की इन लोभ-भरी भोली-भाली बातों में आकर हाथी उठकर उसी समय सियार के साथ भागा। मार्ग में वह बड़े गहरे दलदल में फँस गया। उसने दलदल से निकलने का बहुत प्रयत्न किया पर जब न निकल सका तो सियार से बोला—

"मित्र, मैं तो दलदल में फँस गया। अब बताओ क्या करना चाहिए?

गीदड़ हँसकर बोला—महाराज, मैं अब आप की क्या सहायता कर सकता हूँ। आप चाहें तो मेरी पूँछ पकड़ लें और दलदल से बाहर निकल आएँ।

× × × ×

इसीलिए चतुर मनुष्य को चाहिए कि जो कार्य बल से पूर्ण न हो सके उसे उपायों से पूर्ण करे।

हिरण की बात सुनकर भी कछुए को धैर्य न हुआ और वह भयभीत होकर बिना विचारे सबके साथ पैदल ही चलने लगा। उसी वन में कोई शिकारी शिकार की खोज में घूम रहा था। उसने कछुए को पृथ्वी पर चलता देखकर उठा लिया और अपने घर की राह ली।

अपने मित्र को इस भांति मृत्यु के मुँह में जाते देखकर हिरण, कौआ और चूहे को अत्यधिक संताप हुआ। वे लोग भी शिकारी और कछुए के पीछे-पीछे चलने लगे।

चूहा सोचने लगा कि भाग्य की कैसी महिमा है। पहला दुःख समाप्त भी नहीं हो पाता कि दूसरा सामने आकर खड़ा हो जाता है। इसी भाँति सब एक ही हृदय से दैव को कोसने लगे। कुछ समय तक विचार करने और कोसने के उपरान्त लघुपतनक बोला—

"मित्रो, इसप्रकार विलाप करने से कुछ भी लाभ नहीं होगा। आओ, मिलकर मित्र को छुड़ाने का प्रयत्न करें।"

तीनों ने लघुपतनक का कहना स्वीकार किया और चित्रांग (हिरण) एक सरोवर के तट पर पहुँचकर अपने को मृतवत् दिखाता हुआ लेट रहा। कौआ उसके शरीर पर अपनी चोंच मारने लगा। उसी मार्ग से जाते हुए शिकारी ने हिरण को देखते ही हाथ के कछुए को वहीं पृथ्वी पर सरोवर के तट पर रख दिया और कैंची लेकर हिरण की ओर बढ़ा। इतने में ही झाड़ी में छिपे हिरण्यक (चूहे) ने कछुए के बन्धन काट दिए और कछुआ उसी समय शीघ्रता से उछल-उछलकर सरोवर में घुस गया। इधर शिकारी को अपनी ओर आता देखकर हिरण भी एक ही छलांग में शिकारी के पंजे से बाहर होगया। एक को छोड़कर दूसरे को पाने की लालसा करने वाला शिकारी अपनी करनी को कोसता हुआ शहर की ओर चल दिया। मन्थर आदि मित्र भी

समस्त आपदाओं से मुक्त होकर वहीं सानन्द रहने लगे।

× × × ×

कथा सुनने के उपरान्त राजपुत्र बोले—

राजपुत्र—गुरुदेव, आपकी कृपा से इस नीतिपूर्ण कहानी को सुनकर हमें प्रसन्नता हुई।

विष्णुशर्मा—तुम्हारी ही भांति भगवान सबको सुख और शान्ति प्रदान करें।

॥ पहला खण्ड समाप्त ॥

द्वितीय खण्ड
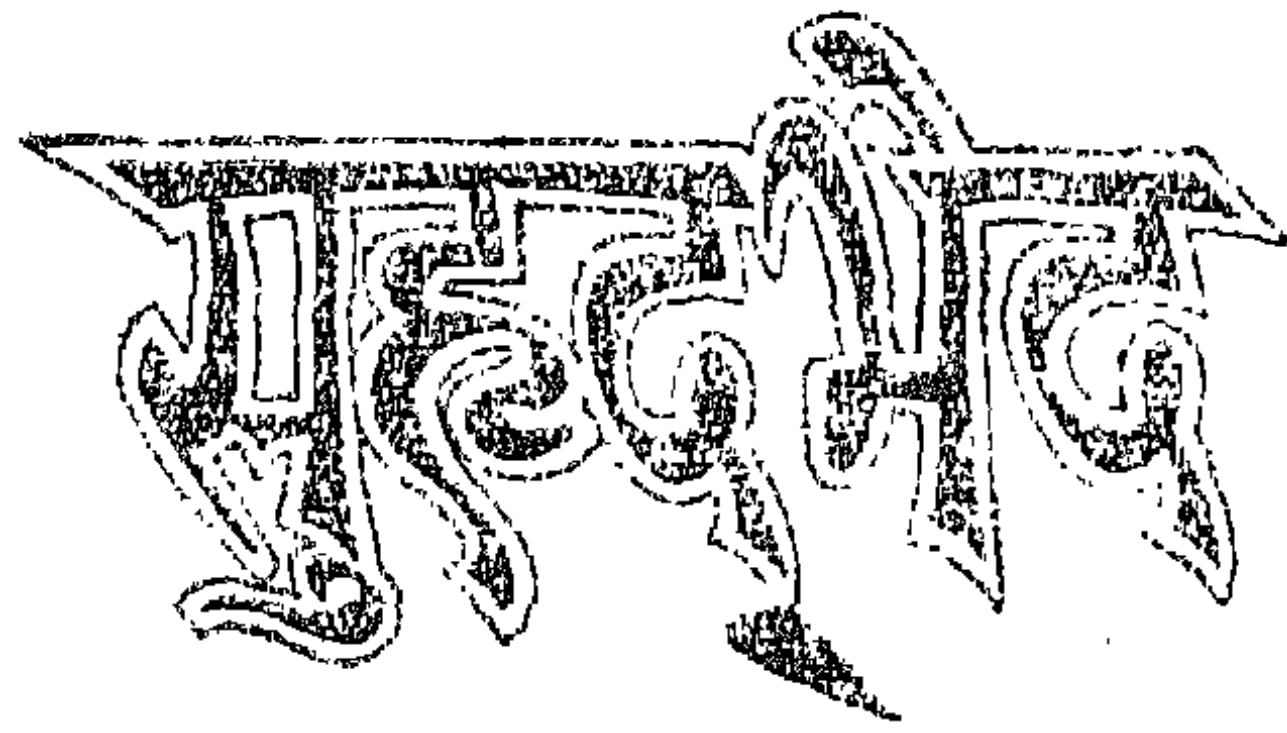
वर्धमानो महान् स्नेहः मृगेन्द्र वृषयोर्वने
पिशुनेनाति लुब्धेन जम्बुकेन विनाशितः ।

. . . . .

सिंह और बैल की बढ़ती हुई मित्रता को लोभी और चुग़लखोर सियार ने नष्ट कर दिया ।

. . . . .

इसखण्ड की कथा-सूची---

राजपुत्रों ने विष्णुशर्मा को प्रणाम करके कहा—"गुरुदेव ! हमने मैत्री के लाभ समझ लिये। अब कृपया आप हमें कोई दूसरा प्रसंग सुनाइए।"

विष्णुशर्मा बोले—"राजपुत्रो ! अब हम आप लोगों को मित्रों में भेद डालने वाली शेर, बैल और सियार की नीति-कथा सुनाते हैं।"

राजपुत्र बोले—"वह क्या कथा है गुरुदेव !"

विष्णुशर्मा बोले—"सुनो—

१.

नीतिकुशल सियार

वर्धमानो महान् स्नेहः मृगेन्द्रवृषयोर्वने
पिशुनेनाति लुब्धेन जम्बुकेन विनाशितः ।
सिंह और बैल की बढ़ती हुई मित्रता को
लोभी और चुगलखोर सियार ने नष्ट कर दिया ।

. . . . .

दक्षिण दिशा में सुवर्णवती नाम की नगरी है। किसी समय इसी नगरी में वर्धमान नाम का धनी व्यापारी रहता था। उसके पास अतुल धन-राशि थी। फिर भी वह धनोपार्जन में लीन रहता था। एक दिन उसने नन्दक और संजीवक

नाम के दो बैलों को अपनी गाड़ी में जोता और भांति-भांति का सामान उस पर लादकर काश्मीर की ओर चल दिया। अभी वह नगर से बाहर निकाला ही था कि उसे उसका पुराना मित्र मिल गया। वर्धमान को इस प्रकार व्यापार के लिये जाते देखकर वह बोला—

"मित्र वर्धमान, तुम्हारे पास तो अपार धन-राशि है, अब तुम और भी धन जमा करने में क्यों लगे हुए हो?"

वर्धमान बोला—"मित्र, अपने को अपूर्ण समझने वाला व्यक्ति एक-न-एक दिन अवश्य पूर्ण हो जाता है। क्योंकि वह सदा प्रयत्नशील रहता है। इसके विपरीत अपूर्ण होते हुए भी अहङ्कारवश अपने को पूर्ण समझने वाला व्यक्ति दरिद्र हो जाता है। मनुष्य को कभी भी धन की अधिकता देख निश्चेष्ट नहीं होना चाहिए। जल की एक-एक बूंद से घड़ा भर जाया करता है। मैं भी बार-बार थोड़ा-थोड़ा धन उपार्जित करूँगा तो एक दिन यही अल्प धन अपार धन बन जाएगा।"

इस प्रकार अपने मित्र को समझाकर वह व्यापारी आगे बढ़ा। मार्ग में सुदुर्ग नाम के निविड़ वन में पहुँचकर संजीवक बैल गिर पड़ा और उसकी एक टाँग टूट गई।

संजीवक के अचानक गिर पड़ने से वर्धमान को बड़ा दुःख हुआ। इस विघ्न के कारण वह वहीं जंगल में ठहर गया और विचार करने लगा—

चतुर व्यक्ति चाहे कितनी भी चतुरता से इधर-उधर जाकर

पुरुषार्थ करे, उसका अच्छा या बुरा फल तो विधाता के हाथ में है। अब क्या किया जाए ? उसी समय उसे ध्यान आया—

आपत्ति में कभी भी घबराना नहीं चाहिये। क्योंकि घबराना ही किसी भी काम में सबसे बड़ा विघ्न है। अब तो जैसे भी हो सके उपाय करना चाहिये। यह विचार कर वह संजीवक को वहीं छोड़कर पास के धर्मपुर नाम के शहर में गया। वहाँ से एक और हृष्ट-पुष्ट बैल को ले आया। उसे गाड़ी में जोतकर वर्धमान तो अपने व्यापार के लिए काश्मीर की ओर चला गया और इधर संजीवक जैसे-तैसे अपने तीन पैरों पर खड़ा हुआ और स्वतन्त्रतापूर्वक वन में फिरने लगा। वन में उसके भाग्य ने उसकी सहायता की। स्वेच्छापूर्वक खाने-पीने के कारण वह बहुत बलवान हो गया।

उसी वन में पिंगलक नाम का सिंह राज्य करता था। दमनक और करकट नाम के दो उसके मन्त्री के पुत्र थे। ये दोनों प्रायः पिंगलक के साथ रहते। एक दिन पिंगलक पानी पीने की इच्छा से यमुना नदी की ओर गया। वहाँ उसने मेघ-गर्जन के समान किसी का शब्द सुना। वह विचार करने लगा—यह किसकी गर्जना है ? उसे इस गर्जना से इतना भय हुआ कि उसका रंग फीका पड़ गया और वह बिना पानी पिये ही वापस लौट आया।

पास ही खड़ा हुआ दमनक यह सब देख रहा था। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह अपने साथी करकट से बोला—"न जाने क्यों

आज महाराज पिंगलक बिना जल पिये ही नदी से वापस चले आए। अब उन्हें देखो कितने उदास बैठे हैं।"

"अरे भाई ! छोड़ो भी इन बातों को, हमारी बला से। हम तो सेवक-वृत्ति से ही दूर रहेंगे। यह भी कोई जीवन है ? देखो भी, सेवक कितना मूर्ख होता है। सदा उन्नति पाने के लिए अपना मस्तक झुकाए रहता है। सुख भोगने के लिए दुःखों के पहाड़ ढोता है। स्वयं जीवित रहने के लिए अपने प्राणों तक की बलि दे देता है। करटक ने उत्तर दिया।

"कुछ भी हो ! जिसे एक बार स्वामी स्वीकार कर लिया उसकी सेवा करना, उसकी कुशल-क्षेम पूछना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है।"

"यह हमारा नहीं, राजा के मन्त्री का कर्त्तव्य है। हम जिस काम के लिए हैं वही करें अन्यथा हमारा भी वही हाल होगा जो कील उखाड़ने वाले बन्दर का हुआ था।"

दमनक बोला—"भाई, यह कथा मुझे भी सुनाओ।"

करटक बोला—"सुनो........

२.

जिसका काम उसी को साजे

अव्यापारेषु व्यापारं यो नरः कर्तुमिच्छति
स भूमौ निहतः शेते कीलोत्पाटीव वानरः।

. . . .

जो दूसरे के कर्तव्य कार्य को स्वयं करके अनधिकार चेष्टा करता है वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है।

. . . .

मगध देश में धर्मारण्य के पास शुभदत्त नाम का कायस्थ बौद्धसंन्यासियों के निवास के लिए विहार बनवा रहा था। विहार के आस-पास मकान बनाने की लकड़ियाँ पड़ी थीं! उन्हीं में एक लकड़ी को बीच से थोड़ा-सा चीरकर उसे अलग-अलग रखने की इच्छा से बढ़ई ने उसमें एक कील लगा दी थी। इतने में ही जंगल से खेलता-कूदता एक बन्दरों का समूह उधर से निकला। इस समूह में से एक बन्दर उस लकड़ी पर चढ़ गया और उसके बीच की कील दोनों हाथों से पकड़कर निकालने लगा। बड़े प्रयत्न से उसने कील को निकाल लिया। कील के निकलते ही बन्दर का पिछला भाग उन दोनों खण्डों के बीच में फँस गया और वह दबकर मर गया।

जिस काम की पूरी पहचान न हो उसमें दखल नहीं देना चाहिए।

करटक ने आगे कहा—"दूसरे का काम करना तो हानिकारक है ही, यदि उस काम से स्वामी का लाभ होता हो तब भी हानि-कारक ही है।

दमनक बोला—"वह कैसे ?"

करटक बोला—"सुनो।

३.

अपने काम से काम

पराधिकार चर्चां यः कुर्यात् स्वामिहितेच्छया,
स विषीदति चीत्काराद्गर्दभस्ताडितो यथा ।

. . . .

स्वामी की भलाई की कामना से भी जो अनधिकार चेष्टा करता है वह पिटने वाले गधे की तरह दुःखी होता है।

. . . .

बनारस में कर्पूरपटक नाम का धोबी रहता था। उसके पास एक गधा और एक कुत्ता था। दोनों उसके आँगन में बँधे रहते। एक रात्रि को वह गाढ़ निद्रा में सो रहा था कि उसके घर में एक चोर आगया। कुत्ता और गधा दोनों ने चोर को आते देखा, पर जब कुत्ता बोला ही नहीं तो गधा उसे फटकारते हुए बोला :—

"मित्र, चोर आगया और तुम चुपचाप आराम से बैठे हो। तुम्हें नहीं मालूम कि चोर के आने पर तुम्हारा पहला कर्तव्य है कि तुम शोर मचाकर स्वामी को जगा दो।"

कुत्ता बोला—"भाई तुम मेरे कर्तव्य की चिन्ता न करो। तुम्हें क्या मालूम नहीं, मैं दिन-रात इसके घर की रक्षा करता हूँ इसलिए बहुत दिनों से कोई चोरी नहीं हुई। आज यह मेरे उपकार भूल गया और भरपेट खाना भी नहीं देता।

"मूर्ख"—गधा क्रोध में आकर बोला—"ऐसा सेवक भी किस काम का जो काम के समय स्वामी से माँगना प्रारम्भ कर दे।

तू समय पड़ने पर स्वामी-कार्य की उपेक्षा करता है। मैं तो स्वामी का सच्चा सेवक हूँ। मैं अपने स्वामीको अवश्य जगाऊँगा।"

यह कह गधे ने तार-स्वर से चिल्लाना शुरू किया। नींद खुल जाने के कारण स्वामी को गधे पर बहुत क्रोध आया। चोर तो भाग गए पर गधे को इतनी मार पड़ी कि वह अधमरा होगया।

इसलिये कहते हैं अपने काम से काम रखो। दूसरे के काम में दखल न दो।

× × × ×

धोबी और गधे की कहानी सुनाकर करटक बोला—"तभी तो मैं कहता हूँ कि हमें दूसरे के काम में हाथ नहीं डालना चाहिए। पिंगलक का अवशिष्ट भोजन तो हमें मिल ही जाता है, फिर हम क्यों किसी बात की चिन्ता करें।"

दमनक—"केवल भोजन ही तुम्हारे जीवन का लक्ष्य है। जिसका खाते हो, उसकी तुम्हें कुछ भी चिन्ता नहीं।"

करटक—"हम कौन से पिंगलक के प्रधान मन्त्री हैं। हम तो उप-प्रधान हैं। जब वह ही हमें नहीं पूछता तो हम ही क्यों उसकी चिंता करें?"

दमनक—"तुम नहीं जानते करटक! स्वामी स्त्री, और लता अपने निकट रहने वाले को ही अपना लेते हैं।"

करटक—"अस्तु, तुम्हारा अभिप्राय क्या है? तुम करना क्या चाहते हो?"

दमनक—"सुनो, हमारा राजा आज भयभीत है। इसकी आकृति नहीं देखते, चेहरे का रंग उतर गया है।"

करटक—"तो तुम क्या करोगे?"

दमनक—"मैं राजा के पास जाकर राजनीति के अनुसार उसकी यह चिंता दूर करूँगा।"

करटक—"फिर क्या?"

दमनक—"फिर, फिर वह हमारे वश में हो जाएगा, और हमारे दिन आनन्दपूर्वक कटने लग जायेंगे।"

करटक—"यदि ऐसा है तो जाओ, भगवान् तुम्हारा कल्याण करें।"

चतुर दमनक करटक से विदा लेकर पिंगलक की राज-सभा की ओर बढ़ चला। वहाँ उसने देखा भालू, चीता, हाथी और न जाने कितने पशु उसके दरबार में बैठे हैं। दमनक को आते देखकर पिंगलक ने द्वारपाल को संकेत से कहा कि उसे बिना रोक-टोक आने दिया जाए। दमनक को राजा ने सभा में समुचित स्थान दिया और फिर बोला—

"मन्त्रीपुत्र! आज बहुत समय बाद आपने राज-सभा में दर्शन दिए।"

दमनक—"महाराज, यदि आपको मुझसे कोई कार्य नहीं तो समय पर आपकी सेवा में उपस्थित होना मेरा तो परम धर्म है। मैं क्षुद्र जीव हूँ तो क्या हुआ ? एक छोटा-सा तिनका भी समय पर काम आता है। फिर मैं तो हाथ-पैर वाला चलता-फिरता सजीव प्राणी हूँ।"

पिंगलक—"तुम यह क्या कहते हो बेटा, तुम तो हमारे भूतपूर्व मन्त्री के सुपुत्र हो ! साथ ही नीतिज्ञ भी हो ! तुम्हें यहाँ आने से किसने रोका ? मैं तो सहर्ष तुम्हारी सेवा स्वीकार करना चाहता हूँ।"

दमनक ने देखा स्वामी इस समय मुझ पर अत्यधिक प्रसन्न हैं। अतः वह बोला—

"स्वामी, मैं आपसे एकान्त में कुछ बात पूछना चाहता हूँ। आप आज्ञा करें तो……।

पिंगलक ने सब को एक ओर कर दिया और दमनक को अपने पास बुलाकर कहा—

"कहो मन्त्री-पुत्र !"

दमनक—"महाराज, मैं पूछना चाहता हूँ कि आप यमुना तट पर पहुँचकर भी बिना पानी पिए वापस क्यों लौट आए ?"

पिंगलक—"बेटा, यह तुम्हारा भ्रम है ! कुछ भी तो नहीं था !"

दमनक—"स्वामी, मैं आपका सेवक हूँ। आप यदि मुझे बता-देंगे तो मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँगा। हाँ, यदि आप न बताना चाहें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

पिंगलक—गम्भीर होकर सोचने लगा। फिर कुछ समय उपरान्त बोला—

"तुम्हारा विचार ठीक है ! मैं तुम्हें बता रहा हूँ, पर यह बात गुप्त रहनी चाहिए। इस वन में अब कोई महान् बलशाली पशु आ गया है। उसकी हुंकार मेघ-गर्जन के समान है। जिसकी हुंकार ही इतनी डरावनी है वह स्वयं कितना बलवान् होगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अतः अब मैंने निश्चय कर लिया है कि शीघ्र ही इस वन को छोड़कर किसी दूसरे वन में चला जाऊँ।"

दमनक—"महाराज, उस भयानक गर्जना को मैंने भी सुना है। मैंने अपने जीवन में तो ऐसी गर्जना सुनी नहीं। पर महाराज आप वन छोड़कर क्या करेंगे ?"

पिंगलक—वन छोड़कर युद्ध की तैयारी करूँगा और इस पर विजय प्राप्त करूँगा। मैं अपने शत्रु को जीवित नहीं देख सकता।"

दमनक—"महाराज, वह मन्त्री योग्य नहीं होता जो स्थान छुड़ाकर फिर युद्ध करने की मन्त्रणा दे। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं ही इस भार को अपने कन्धों पर ले लूँ और उस बलवान् से आपकी संधि करा दूँ।

पिंगलक—"यदि तुम ऐसा कर सको तो मैं तुम्हें प्रधान मन्त्री पद दे दूँगा।"

इतना कहकर पिंगलक ने बहुत-सा पुरस्कार देकर दमनक और करटक को विदा किया।

मार्ग में करटक दमनक से बोला—"दमनक, स्वामी का कार्य किये बिना इतना अधिक पुरस्कार लेकर तुमने अच्छा नहीं किया।"

दमनक मुस्कराकर बोला—"भाई तुम चुप भी रहो। मैं स्वामी के भय का कारण जानता हूँ। वह हुंकार बैल की थी। तुम तो जानते ही हो कि बैल हमारा खाद्य-पदार्थ है। फिर उससे कैसा भय ?

करटक—"यदि तुम यह जानते थे तो तुमने महाराज को यह सब पहले ही क्यों नहीं बता दिया ?"

दमनक फिर हँसा और बोला—"भाई, तुम तो निरे भोले हो ! यदि हम महाराज को यह सब पहले ही बता देते तो हमें इतना पुरस्कार कैसे प्राप्त होता ? स्वामी को कभी भी निश्चिन्त नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से सेवक का वही हाल होता है जो दधिकर्ण का हुआ था।"

करटक—"वह क्या ?"

दमनक—"सुनो—

४.

स्वार्थ का संसार

निरपेक्षो न कर्तव्यो भृत्यैः स्वामी कदाचन ।

सेवक कभी भी स्वामी को निरपेक्ष न करें ।

उत्तर दिशा में अर्बुद शिखर नाम के पर्वत पर दुर्दान्त नाम का सिंह रहता था। जिस गुहा में वह रहता था, उसी में एक चूहा भी रहा करता था। शेर जब आहार करके उस गुहा में विश्राम करता तो वह चूहा अपने बिल से निकलता और सिंह के केशों को कुतरा करता। शेर जब सोकर उठता तो अपने केशों को कुतरा देखकर उसे बहुत क्रोध आता। पर महान् पराक्रमशाली होने पर भी वह चूहे का कोई भी अपकार नहीं कर सकता था। अन्त में एक दिन चूहे को घूमते देखकर उससे न रहा गया। उसने चूहे को पकड़ने के लिए अपना पञ्जा बढ़ाया। पर चूहा उसका पञ्जा बढ़ने से पहले ही बिल में जा चुका था। वह खीज उठा। कुछ समय बाद उसने सोचा, छोटे शत्रु का महान् पराक्रमी भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उसके नाश के लिए उसके समान

ही कोई सैनिक होना चाहिए। यह विचार आते ही वह चूहे के लिए एक विलाव को ढूँढ़ने निकला। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह एक ग्राम में पहुँच गया। वहाँ उसने विलाव को बुलाया। पहले तो बिलाव भय से काँपने लगा, पर सिंह का आश्वासन पाकर वह उसके पास गया। सिंह ने अपनी मीठी-मीठी बातों से विलाव को फुसलाया और फिर उसे अपनी गुहा में ले गया।

अब सिंह नित्य उसे ताजा मांस लाकर देता और आदर-पूर्वक खिलाता। उससे बड़ी मीठी-मीठी बातें करता। इधर बिलाव को देखकर चूहे ने भी अपने बिल से निकलना बन्द कर दिया। सिंह को अब चूहे का भय न रहा और वह निश्चिन्त हो-कर सोने लगा। पर सिंह यह जानता था कि चूहा अब भी बिल में है। क्योंकि वह कभी-कभी बिल में शब्द किया करता था। जब-जब चूहा शब्द करता, सिंह बिलाव को त्यों-त्यों और अधिक स्वादिष्ट मांस लाकर दिया करता।

एक दिन दुख से अधिक व्याकुल होकर चूहा अपने बिल से निकला। उसे देखते ही बिलाव ने उसे मार डाला और खा लिया। इसी तरह कई दिन बीत गए। पर सिंह ने चूहे का जब शब्द नहीं सुना तो वह समझ गया कि चूहे को बिलाव ने खा लिया। सिंह ने अब बिलाव को मांस देना भी बन्द कर दिया। यहाँ तक कि बिलाव भूखों मरने लगा और गुहा छोड़कर भाग गया।

दमनक—"इसीलिये मैं कहता हूँ कि सेवक को कभी निरपेक्ष नहीं करना चाहिये।"

तदुपरान्त दमनक और करटक सञ्जीवक के पास गये। दमनक के इशारे से करटक एक वृक्ष के नीचे अकड़कर बैठ गया। दमनक संजीवक से बोला—

दमनक—"ओ बैल ! मेरी ओर देख। मैं महाराजाधिराज पिंगलक की ओर से वन की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया हूँ। वह देखो, हमारा सेनापति करटक तुम्हें आज्ञा देता है कि तुम शीघ्र ही हमारे वन की सीमा से बाहर चले जाओ। हमारे स्वामी ज़रा-ज़रा सी बातों पर गरम हो जाते हैं। क्रोध में क्या कर बैठें, कोई कुछ कह नहीं सकता।"

यह सुनते ही संजीवक करटक के सामने हाथ जोड़कर खड़ा होगया और बोला—

संजीवक—"सेनापते !

करटक—"ओ बैल ! यदि तू इस वन में रहना चाहता है तो चलकर हमारे स्वामी को प्रणाम कर।"

संजीवक—"स्वामी ! कौन स्वामी ?

करटक –"हमारे स्वामी महाराधिराज सिंह पिंगलक। उसके पास ही तुम्हें जाना होगा।"

संजीवक के होश उड़ गये वह डरते-डरते बोला—

"सेनापते, पहले मुझे अभय वचन दो।"

करटक—"ओ मूर्ख बैल, तू इतना क्यों डरता है। वह तो महापराक्रमी सिंह है। तुझ जैसे तृणाहारी जीव को मारना तो वह अपना तिरस्कार समझता है। मूर्ख बैल ! तेरी यह आशंका

तो नितान्त निर्मूल है। सिंह यदि गर्जता है तो मेघ गर्जन के प्रत्युत्तर में। वह कभी भी सियारों का शब्द सुनकर थोड़े ही गर्जन करता है ?"

इतना समझाकर दोनों संजीवक को अपने साथ ले गये। पिंगलक के दरबार के निकट पहुँचकर उन्होंने संजीवक को दूर ही एक ओर खड़ा कर दिया और स्वयं पिंगलक के पास गये।

पिंगलक—मन्त्री, तुमने उसको देखा ? वह कौन था ?

दमनक—हाँ, महाराज, हमने उसे देखा। जैसा आपने सोचा था वह वैसा ही निकला। पर आप शान्त-चित्त होकर बैठ जायें और मेरी बात सुनें। केवल शब्द से ही भयभीत न हों, क्योंकि शब्द-मात्र से ही नहीं डरना चाहिये। उसका कारण जानना चाहिये। कारण जानने पर कुट्टिनी को सम्मान प्राप्त हुआ था।

पिंगलक—वह क्या कथा है ?

दमनक—सुनो महाराज !

५.

कारण जानो

ज्ञातव्यं शब्द कारणम्

. . . .

केवल शब्द सुनकर ही भयभीत न होना चाहिए। उसका कारण भी जानना चाहिए।

. . . .

श्री नाम के पर्वत पर ब्रह्मपुर नाम का एक नगर था। 'इस पर्वत की चोटी पर घण्टाकर्ण नाम का राक्षस रहता है' यह जनश्रुति उस समय प्रचलित थी। कारण यह था कि किसी समय एक चोर घण्टा चुराकर उस मार्ग से जा रहा था कि मार्ग में उसे भेड़िये ने मारकर खा लिया। उसके घण्टे को बन्दरों ने उठा लिया। बन्दर उस घण्टे को बारी-बारी से बजाते रहते। मरे हुए आदमी का ढाँचा देखकर और घण्टे का स्वर सुनकर नगरवासियों ने अनुमान लगाया कि अवश्य कोई राक्षस इस शिखर पर रहता है। वह मनुष्यों को खाता है और घण्टा बजाता है।

प्रतिक्षण घण्टे का स्वर सुनकर करला नाम की कुट्टिनी ने

विचार किया कि कहीं पर्वत पर रहनेवाले बन्दर ही तो इस घण्टे को नहीं बजाते ? कुछ विचार करने के बाद वह राजा के पास गई और बोली—

"महाराज यदि आप कुछ धन व्यय करें तो मैं उस राक्षस को वश में कर सकती हूँ।

राजा ने उसे प्रचुर धन दिया। वह पर्वत की चोटी पर गई; वहाँ एक सुन्दर मण्डप बनाया। गणेश आदि का पूजन करवाया और फिर बन्दरों के लिये फल लेकर वह पर्वत के शिखर पर चढ़ गई। वहाँ उसने देखा, बन्दर घण्टा बजा रहे थे। फिर क्या था? उसने वहाँ फल बिखेर दिये। बन्दर फलों की ओर झपटे और वह घण्टा लेकर वापस चल दी।

'करला ने घण्टाकर्ण को वश में कर लिया है' यह जनश्रुति नगर में फैल गई और उसका आदर होने लगा।

× × ×

दमनक—महाराज, इसलिये आप उससे मित्रतापूर्वक बात करें। भयभीत न हों।

इतना कहकर उन्होंने संजीवक को पिंगलक के सम्मुख उपस्थित किया और उन दोनों की मित्रता करा दी। संजीवक भी सिंह का मित्र बनकर वहीं सुख-सहित रहने लगा।

एक दिन पिंगलक का भाई स्तब्धकर्ण वहाँ आया। उसका अतिथि-सत्कार करने के उपरान्त पिंगलक भोजनादि की व्यवस्था करने के लिये संजीवक के साथ वन की ओर निकल पड़ा।

संजीवक—मित्र, आज मारे हुए हिरणों का मांस कहाँ है ?

पिंगलक—वह तो दमनक और करटक ही जानते हैं।

संजीवक—उनसे पूछिये भी कि है भी या नहीं ?

पिंगलक—मित्र, होगा नहीं, उन्होंने खा लिया होगा।

संजीवक—तो क्या वे लोग अकेले ही इतना मांस खा गये होंगे ?

पिंगलक—कुछ खा लिया होगा, कुछ बांट दिया होगा और कुछ फेंक दिया होगा।

संजीवक—मित्र, यह तो अनुचित है। मन्त्री कमण्डलू की भाँति होना चाहिये। बिना विचारे व्यय करने वाले कुबेर का भण्डार भी एक दिन समाप्त हो जाता है।

संजीवक की बात सुनकर स्तब्धकर्ण भी पिंगलक को समझाते हुए बोला—

"भाई, चिरकाल से कार्यरत सेवक के हाथ में कोष नहीं देना चाहिये। इनको तो सन्धि-विग्रह के कार्यों में लगाओ। कोषाध्यक्ष के कार्य के लिये तो यह तृणाहारी संजीवक ही योग्य है।

स्तब्धकर्ण की इस सलाह पर पिंगलक ने संजीवक को कोषाध्यक्ष नियुक्त कर दिया। अब दमनक और करटक की स्वतन्त्रता और स्वार्थ-परायणता समाप्त हो गई। वह सोचने लगे कि अब क्या किया जाय ? उनके आश्रित भाई-बन्धुओं का सुख भी अब छिन गया। करटक ने दुखी होकर पूछा—

करटक—मित्र, अब क्या करना चाहिये ?

दमनक—यह तो अपने किये का ही फल है। इसके लिये किसी दूसरे को दोष देना व्यर्थ है ? वीर विक्रम और साधु भी तो अपने किये से दुःखी हुए

करटक—वीर विक्रम की क्या कथा है ?

दमनक—सुनो—

६.

बिना विचारे जो करे

प्रायः समापन्न विपत्ति काले,
धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति ।

विपत्ति के समय महात्माओं की बुद्धि
भी मलिन हो जाती है ।

एक समय सिंहलद्वीप में बलशाली जीमूतवाहन नाम का राजा राज्य करता था । एक दिन किसी पोतस्थित वणिक के मुँह से उसने सुना कि चतुर्दशी के दिन समुद्र में से एक कल्पवृक्ष प्रगट होता है, जिस पर रत्नों से जटित एक पलंग बिछा रहता है। उसी पलंग पर अपनी कोमल उँगलियों से वीणा बजाती हुई एक कन्या दिखाई देती है ।

यह बात सुनकर जीमूतवाहन को महान् आश्चर्य हुआ । वह निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा । ठीक चतुर्दशी वाले दिन राजा ने भी वीणा बजाते हुये उस कन्या को देखा । वह कन्या आधी तो जलमग्न थी और आधी जल से बाहर । राजा के आश्चर्य का

ठिकाना न रहा। साहसी राजा ने कन्या तक पहुँचने की लालसा से समुद्र में गोता लगाया।

राजा बहुत समय तक जल में रहने के बाद कनकपत्तन नाम के नगर में पहुँचा। उसे और अधिक आश्चर्य हुआ जब उसने वहाँ भी उसी कन्या को पलंग पर बैठकर वीणा बजाते देखा। कन्या के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर राजा वहीं मूर्तिवत् खड़ा रहा।

कुछ ही समय बीता था कि कन्या की एक सहेली राजा के पास आई। राजा ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—

परिचारिके ! पलंग पर बैठकर मधुर वीणा बजाने वाली यह कौन कन्या है ?

परिचारिका—यह विद्याओं के राजा कन्दर्पकेलि की पुत्री है। रत्नमञ्जरी इसका नाम है। इसकी प्रतिज्ञा है कि जो सर्वप्रथम कनकपत्तन में आकर मुझे देखेगा, वही मेरा पति होगा। मैं उसी से जैसे भी होगा विवाह अवश्य करूँगी।

सेविका राजा को रत्नमञ्जरी के पास ले गयी। दोनों ने गान्धर्व विवाह कर लिया और राजा वहीं सानन्द रहने लगा। एक दिन रत्नमञ्जरी ने कहा—महाराज, यहाँ पर आप जितनी वस्तुएँ देखते हैं वे सब आपके ही उपभोग की हैं। परन्तु इस विद्याधरी नाम की स्वर्ण रेखा को कभी भूलकर भी न छूना।

रत्नमञ्जरी की बात सुनकर राजा की उत्सुकता बढ़ गई। वह सोचने लगा—इस स्वर्णरेखा में ऐसी कौन-सी विशेषता है जो रत्नमञ्जरी ने इसे छूने तक के लिये मना किया। उसका कौतूहल

बढ़ता ही गया और यहाँ तक बढ़ गया कि राजा ने उस स्वर्ण रेखा को छू लिया। राजा ने उसे केवल चित्रमात्र समझा था। पर ज्योंही उसने उसे छुआ, रेखा ने पाद प्रहार किया और राजा अपने देश में आकर गिरा। दुःखी होकर अब वह देशान्तरों में घूमने लगा।

दमनक आगे बोला—अब साधु की भी कहानी सुनाता हूँ।

७.

लोभ का फल

अति लोभो न कर्तव्यः

बहुत लोभ नहीं करना चाहिए।

एक बार कोई वणिक अपने घर से निकल पड़ा। वह मलय-गिरि पर पहुँचा और वहाँ बारह वर्षों तक व्यापार करता रहा। एक दिन वह अपनी सारी सम्पत्ति लेकर इस नगर में चला आया। यहाँ वह जिस स्थान पर ठहरने गया, वह एक वेश्या का था। वेश्या के आंगन में एक कठपुतली थी जिसके मस्तक पर एक बहुमूल्य मणि सुशोभित थी। लोभी बनिए का मन उस मणि को लेने के लिए ललचा। वह रात को उठा और उस कठपुतली की मणि को निकालने लगा। अचानक उसी समय कठपुतली ने उसे अपनी दोनों भुजाओं से जकड़ लिया। कठपुतली ने उसे इतनी जोर से पकड़ा कि वह चिल्लाने लगा। उसकी चीख सुनकर वेश्या भी वहीं आगई और बोली—

श्रीमान् जी, आप मलयगिरि से आ रहे हैं। जितना भी धन

आपके पास हो, रख दें। तभी यह कठपुतली आपको छोड़ेगी।

वेश्या ने उसका सारे का सारा धन वहीं रखा लिया और तब उसे छोड़ा।

अब बेचारा वह निर्धन होने के कारण साधु होकर भिक्षाटन करता है।

× × × ×

दमनक बोला—अतएव मैं कहता हूँ कि स्वयं ही अपराध कर के पछताने से कोई भी लाभ नहीं। मैंने अब इसका उपाय भी सोच लिया है। जिस प्रकार मैंने शेर और बैल की मैत्री बनाई उसी प्रकार भंग भी कर सकता हूँ।

करटक—मित्र, इनकी मैत्री, अब बहुत गहरी हो गई है। उसे भंग करना आसान काम नहीं।

दमनक—तुम चिन्ता न करो। जो काम पराक्रम अथवा किसी दूसरी विधि से नहीं हो सकता वह उपायों द्वारा हो सकता है। इन्हीं उपायों के बल पर तो कौए की स्त्री ने साँप को मरवा डाला।

करटक—यह कैसे हुआ?

दमनक—सुनो।

८.

युक्ति से काम लो

उत्पन्नेष्वपि कार्येषु मतिर्यस्य न हीयते ।

. . . .

संकट उपस्थित होने पर भी जिसकी बुद्धि विचलित नहीं होती, वह कार्य में सफल हो जाता है।

. . . .

किसी वृक्ष पर एक कौआ सपत्नीक रहता था। वह बहुत पुराना वृक्ष था। उसके खोखले में एक सर्प भी रहने लगा। एक बार कौए के बच्चों को साँप ने खा लिया। कौआ और उसकी पत्नी को इस घटना से बहुत दुःख हुआ। पर वे सर्प का कुछ बिगाड़ न सके। क्योंकि वह उनसे अधिक बलवान् था।

कुछ समय बाद कौए की पत्नी फिर से गर्भवती हुई और कौए से बोली—

स्वामी, अब हमें शीघ्र ही यह वृक्ष छोड़ देना चाहिए। क्योंकि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पुत्रों के जन्म लेते ही यह दुष्ट उन्हें अवश्य खा जायेगा। मुझे तो अभी से उनकी रक्षा की चिन्ता सता रही है। शास्त्रों में कहा भी है—

ससर्पे च गृहे वासः मृत्युरेव न संशयः।

सर्प वाले गृह में रहना मृत्यु का आह्वान करने के बराबर है।

कौआ—तुम भय मत करो। अभी तक तो मैं उसके अपराधों को क्षमा करता आया हूँ, पर इस बार मैं कभी भी क्षमा नहीं करने का।

काकी हँसते हुए बोली—उससे आप लड़ेंगे? आपको नहीं मालूम सर्प कितना बलवान् होता है।

कौआ—ऐसी शंका करना व्यर्थ है। बुद्धिबल से बड़े से बड़े शत्रु पर भी विजय प्राप्त की जा सकती। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो सुनो मैं तुम्हें सिंह और खरगोश की कहानी सुनाता हूँ।

काकी—सुनाइए!

९.

अक़्ल बड़ी कि भैंस

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलं।

. . . .

जिसके पास बुद्धिबल है वही बलवान है।
अन्यथा बुद्धिहीन बल से क्या लाभ?

. . . .

मन्दर पर्वत पर दुर्दान्त नाम का सिंह रहता था। सारे पर्वत पर उसके समान कोई दूसरा बलवान् पशु नहीं था। इसलिए वह मनमाने ढंग से पशुओं को मारकर खा जाया करता था। जितने पशु वह खा सकता था उससे अधिक का वध कर देता था।

पशुओं की इस बेकार बलि को देखकर पर्वत के पशु भय से काँप उठे। उन्होंने मन्त्रणा की और जाकर सिंह से निवेदन किया कि आप व्यर्थ में ही इतने पशुओं की हत्या न किया करें। हम स्वयं आपकी सेवा में एक पशु नित्य भेज दिया करेंगे।

उसी दिन से नियमानुसार एक-एक पशु नित्य सिंह के पास उसके भोजन के लिए जाने लगा। कुछ समय बाद किसी बूढ़े खरगोश की बारी आई। वह सोचने लगा—यदि मैं सिंह से

अपनी रक्षा की प्रार्थना करूँ तो वह स्वीकार करने वाला नहीं। फिर उससे प्रार्थना करना ही व्यर्थ है।

खरगोश निर्धारित समय से बहुत देर बाद पहुँचा। इतनी देर बाद और वह भी छोटे से बूढ़ खरगोश को आता देखकर सिंह जलभुनकर खाक हो गया।

सिंह—दुष्ट ! तू इतनी देर से क्यों आया ?

खरगोश—महाराज क्षमा करें। इसमें मेरा कोई भी अपराध नहीं।

सिंह—तो इतनी देर से आने का कारण ?

खरगोश—"महाराज, रास्ते में मुझे एक और सिंह मिल गया था। कहने लगा—तू किसके पास और क्यों जा रहा है ? मैंने आपका नाम बताकर कहा—वह हमारे राजा हैं। मैं उनके भोजन के लिए जा रहा हूँ। फिर क्या था ? उसने मुझको बहुत से अपशब्द कहे और कहा कि कहाँ है वह तुम्हारा राजा ? उसे बुलाकर लाओ मैं उसे अभी पराजित करके स्वयं राजा बनूंगा।

इतना सुनते ही सिंह की आँखें अंगारे बरसाने लगीं। वह बोला—चल, पहले मैं वहीं चलता हूँ। उसको मार कर ही मैं तुझे खाऊँगा।

सिंह खरगोश के साथ-साथ हो लिया। कुछ दूर एक गहरे कुंए पर पहुँचकर खरगोश ने सिंह से कहा—

महाराज, वह इसी में रहता है। आप उसे स्वयं देख लें। बस गहरे कूँए में अपनी छाया देखकर सिंह क्रोध में भर कर

बहुत जोर से गरजा। कुएँ में से भी उसकी प्रतिध्वनि निकली। सिंह ने उसे अपने प्रतिपक्षी का गर्जन समझा। और वह उसे मारने को कुँए में कूद पड़ा और स्वयं मर गया।

कौआ—इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि जिसके पास बुद्धिबल है वही बलवान् है।

× × × ×

काकी—यह तो मैंने सुन लिया। पर यह बताओ कि अब क्या करना चाहिये ?

कौआ—पास के सरोवर पर एक राजपुत्र नित्यप्रति स्नान करने आता है। स्नान से पूर्व वह तालाब पर पड़ी शिला पर वस्त्र एवं अलंकार आदि उतार कर रख देता है। तुम वहाँ से उसका सुवर्णहार अपनी चोंच में उठा लाओ और इस सर्प के खोखले में डाल दो। यह सुवर्णहार ही सर्प की जान ले लेगा। अगले दिन प्रातःकाल काकी ने यही किया। हार के पीछे भागते-भागते रक्षक लोग जब खोखले के पास आए तो वहाँ सर्प को देखकर उन्होंने उसे मार डाला।

दमनक—इसीलिए मैं कहता हूँ जो कार्य उपायों द्वारा हो सकता है वह कार्य केवल पराक्रम से नहीं हो सकता। तुम विश्वास करो मैं बुद्धिबल से ही संजीवक और पिंगलक की मित्रता नष्ट कर दूँगा।

तब, दमनक पिंगलक के पास गया। प्रणाम करके बोला—महाराज क्षमा करें आज मैं बिना बुलाए ही आप से कुछ निवेदन करने आया हूँ।

पिंगलक—कहो भी पुत्र ! क्या कहना चाहते हो ?

दमनक—महाराज, आपको हो सकता है अचानक विश्वास न हो, पर जो कुछ मैं कहता हूँ वह सत्य कहता हूँ ।

पिंगलक—मन्त्रीपुत्र, मैं आज से नहीं वर्षों से तुम्हारा विश्वास करता आया हूं । फिर आज तुम्हें कैसे यह शंका हुई ?

दमनक—महाराज, मुझपर आपका विशेष अनुग्रह है । तभी तो मैं सब सत्य-सत्य आपको बताता हूँ । बात यह है कि आपने यह ठीक नहीं किया कि सब मन्त्रियों के हाथ से कार्य छीन लिए और केवल संजीवक को उनका अधिष्ठाता बना दिया । आज उसी का यह फल है कि संजीवक अब आप को इस वन का राजा नहीं देख सकता । वह आपकी हत्या का षड्यन्त्र रच रहा है ।

पिंगलक—वह मुझे मारना चाहता है !

दमनक—महाराज केवल चाहता ही नहीं, उसने इसका प्रबन्ध भी कर लिया है ।

इतना सुनना था कि पिंगलक भयभीत होकर सोचने लगा—अब क्या किया जाए ? संजीवक बहुत बलशाली है । उससे युद्ध करना कोई आसान काम नहीं ।

पिंगलक को चिन्ताग्रस्त देखकर दमनक बोला—महाराज, आप विशेष चिन्ता न करें । दमनक के रहते आपका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता ।

पिंगलक—तो क्या किया जाए । संजीवक को वन से निकाल दिया जाए ?

दमनक—यह तो बड़ी भारी भूल होगी। वह बाहर जाकर फिर हमें परास्त कर सकता है।

पिंगलक—इन सब बातों से पहले हमें सोचना चाहिए कि वह हमारा बिगाड़ क्या सकता है ?

दमनक—किसी के सहायक एवं साथियों को बिना जाने यह निश्चय हो ही नहीं सकता। आपको यह सुनकर महान् आश्चर्य होगा कि एक टिट्टिभ ने महासागर को व्याकुल कर दिया था।

पिंगलक—कैसे ?

दमनक—सुनिए—

१०

संघ की शक्ति

अङ्गाङ्गिभावमज्ञात्वा कथं सामर्थ्य निर्णयः ?

. . . .

किसी के सहायकों को बिना जाने उसके बल का अनुमान किस तरह लगाया जा सकता है ?

. . . .

समुद्र के दक्षिणी तट पर टिटीहरी का एक जोड़ा रहता था। समय पाकर टिटीहरी का प्रसव काल निकट आ गया। तब, टिटीहरी टिटिभ से बोली स्वामी, यह स्थान प्रसव के योग्य नहीं है। कहीं समुद्र की लहरों में हमारे बच्चे बह न जाएँ ?

टिट्टिभ—तुम इसकी चिन्ता क्यों करती ? जब तक मैं हूँ कोई भी तुम्हारे पुत्रों को छू तक नहीं सकता। मुझे समुद्र से निर्बल क्यों समझती हो ?

टिट्टिभ की बात सुनकर टिटीहरी ठहाका मारकर हँसी और व्यंग्य से बोली—क्या कहने आपके ! एक समुद्र क्या, सातों समुद्र भी मिलकर आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

कुछ समय पश्चात् गम्भीर होकर टिटीहरी फिर बोली—

स्वामी, आप में और समुद्र में कितना अन्तर है ? कभी भी अपने से अधिक बलवान् से झगड़ा नहीं करना चाहिए। शास्त्रों ने कहा है कि अयोग्य कार्य का प्रारम्भ, बन्धुओं के साथ शत्रुता, बलवान् से वैर और नारी पर विश्वास, ये चारों मृत्यु के द्वार हैं।

टिटीहरी ने कई प्रकार से टिट्टिभ को समझाया पर वह जिद्दी बिल्कुल नहीं माना और अहंकार पूर्वक बोला—"तुम चिन्ता न करो। अपने स्थान को छोड़कर मैं कहीं भी नहीं जाऊँगा। समुद्र जब लड़ने आएगा तब मैं उससे स्वयं निबट लूंगा।"

टिट्टिभ दम्पती की बातें सुनकर समुद्र को टिट्टिभ का बल जानने की उत्कण्ठा हुए। उसने प्रसव के पश्चात् टिटीहरी के अण्डे छीन लिए। अण्डों के छिन जाने से टिटीहरी को बहुत दुःख हुआ। वह रो-रोकर विलाप करने लगी। वह बोली—

"स्वामी, अब मैं क्या करूँ ? मैंने पहले ही कहा था कि आप इस स्थान को छोड़ दें।"

पत्नी को आश्वासन देते हुए टिट्टिभ ने कहा—"तुम रोओ मत, मैं तुम्हारे अण्डे अवश्य वापस ला दूँगा।"

इस तरह पत्नी को समझा-बुझाकर टिट्टिभ ने अपने साथी पक्षियों को एकत्रित किया और उनको साथ लेकर गरुड़देव के पास पहुँचा। सब पक्षियों ने मिलकर गरुड़ देव से निवेदन किया और विलाप करते हुए टिट्टिभ बोला—

"महाराज, समुद्र ने निरपराध ही मुझे दण्ड दिया। मेरे अंडों को बहाकर ले गया।"

अपने परिवार का दुःख गरुड़ से देखा न गया। वह भगवान् विष्णु के पास गए और टिट्टिभ के अंडे दिलाने की प्रार्थना की। विष्णु भगवान् ने भी समुद्र को बुला भेजा। बेचारे समुद्र ने विष्णु जी की आज्ञा पाते ही अंडे वापस कर दिए। टिटीहरी अपने अंडों को पाकर खिल उठी।

× × × ×

दमनक—"महाराज, इसीलिए मैं कहता हूँ कि जब तक संजीवक के सहायकों का पता न चले, तब तक उसके बल का अनुमान कैसे लगाया जा सकता है!"

पिंगलक—"मैं तुम्हारी बातें तो मानता हूँ। पर यह कैसे जाना जाए कि वह मुझ से द्वेष करता है।"

दमनक—"जिस समय वह आपके सामने अपने पैने सींगों को उठाकर युद्ध के लिए आएगा, उस समय इस बात का भी पता चल जाएगा।"

दमनक उठा और वन की ओर चल पड़ा। कुछ दूर चलने पर उसे संजीवक घास चरता हुआ दिखाई दिया। दमनक भी अपने को कुछ चिन्तित-सा दिखाते हुए चलने लगा। उसको उदास देखकर संजीवक ने पूछा—

"मित्र, आज उदास क्यों दिखाई दे रहे हो? कुशल तो है न?"

दमनक—"मित्र, मैं तो बड़ी भारी दुविधा में पड़ा हुआ हूँ। यदि कुछ कहता हूँ तो राजा से विश्वासघात करता हूँ। यदि नहीं कहता तो बन्धु के साथ अन्याय करता हूँ। ठीक वैसे ही जैसे कि

डूबता हुआ आदमी सर्प का सहारा पाकर उसे छोड़ना भी नहीं चाहता और पकड़ भी नहीं सकता ।"

संजीवक--"मित्र फिर भी सब कुछ विस्तार सहित कहो ।"

दमनक--"यह सच है कि राजा के विचार गुप्त रखने चाहिएँ। परन्तु क्योंकि तुम मेरे विश्वास पर आए हो, अतएव मैं तुमको संकट से छुड़ाऊँगा। सुनो—राजा पिंगलक एक दिन एकान्त में कह रहा था कि मैं संजीवक को मारकर अपने बन्धुओं को निमन्त्रण दूँगा ।"

संजीवक—"यह मैं कैसे विश्वास करूँ कि वह मुझे मारना चाहता है ?"

दमनक—"जब पिंगलक लाल-लाल आँखें दिखाते हुए पूँछ उठाकर तुम्हारी ओर आयेगा, तब स्वयं पता चल जाएगा ।"

संजीवक से इस प्रकार कहकर दमनक करटक के पास गया और फिर उसे लेकर सिंह के पास जाकर बोला--

"महाराज, वह देखिए। संजीवक आपकी ओर हमले के लिये आ रहा है। अतः आप भी युद्ध के लिये तैयार हो जाएँ।" दमनक का इतना कहना था कि पिंगलक की आँखें लाल हो गईं। पूँछ क्रोध के कारण अकड़ गई। वह संजीवक की ओर बढ़ चला। पिंगलक को पूँछ उठाकर युद्ध के लिए प्रस्तुत देखकर संजीवक भी प्रस्तुत हो गया। दोनों के युद्ध में संजीवक मारा गया।

संजीवक की मृत्यु से पिंगलक को बहुत दुःख हुआ वह उदास होकर सोचने लगा कि मैंने यह बड़ा भारी पाप किया।

पिंगलक को इस तरह उदास देखकर दमनक उसके पास आया और बोला—

"महाराज की जय हो ! आप उदास क्यों हैं महाराज ? शत्रु को तो जिस भाँति हो मारना ही चाहिये। नीति कहती है कि राज्य की इच्छा करने वाले शत्रु को कभी भी जीवित न रखे। राजा का कार्य ही दण्ड देना है। यह तो केवल कपटी मित्र ही था। माता, पिता, भाई, पुत्र चाहे कोई भी हो, यदि वह राज्य-सिंहासन की इच्छा करे तो उसे मार डालना चाहिये।"

इतने में वन के अन्य पशु भी एकत्रित हो गये। सबने जय-जयकार करनी प्रारम्भ की। जय-जयकार से पिंगलक अपनी विचार धारा से भटक गया और विजय की मस्ती में झूमने लगा। वह फिर अपने सिंहासन पर आसीन हो गया और दमनक तथा करटक ने पिंगलक की विजय के बहाने अपनी विजय के गीत आलापने प्रारम्भ कर दिये।

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त ॥

तृतीय खण्ड

हंसैः सह मयूराणाम् विग्रहे तुल्य विक्रमे।
विश्वास्य वंचिता हंसाः काकैः स्थित्वारि मन्दिरे ॥

हंस और मोर का युद्ध होने पर कौए ने शत्रु के
शिविर में घुसकर विश्वासघात किया और उन्हें
ठग लिया।

इस खण्ड की कथा-सूची

राजपुत्रों ने पण्डित विष्णुशर्मा को नमस्कार किया और कहा—

"गुरुदेव, हम क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय स्वभाव से ही युद्धप्रिय होते हैं। अतः आज हमारी इच्छा युद्धनीति सुनने की है।"

विष्णुशर्मा—"अच्छा, तो हम आज आप लोगों को विग्रह प्रकरण सुनाते हैं।"

१.

घर का भेदी

विश्वास्य वंचिता हंसाः काकैः स्थित्वारि मन्दिरे ।

. . . .

कौए ने हंसों के क़िले में रहकर उनके ही साथ छल किया और अपने पक्ष को विजय दिलाई ।

. . . .

कर्पूरद्वीप में पद्मकेलि नाम का एक तालाब है । वहाँ किसी समय हिरण्यगर्भ नाम का राजहंस रहता था । द्वीप के पक्षियों ने मिलकर हिरण्यगर्भ को अपना राजा बना लिया । हिरण्यगर्भ बड़ा धर्मात्मा था । उसके शासन में सब पक्षी सानन्द रहते थे । एक दिन वह कमलों के सिंहासन पर अपने परिवार तथा मन्त्री

सारस के साथ बैठा था। परस्पर विनोद-वार्ता चल रही थी कि दीर्घमुख नाम का बगुला कहीं से आया और हिरण्यगर्भ को प्रणाम करके बैठ गया।

हिरण्यगर्भ—"दीर्घमुख, तुम देशान्तरों का भ्रमण करके आए हो, कोई नवीन समाचार सुनाओ।"

दीर्घमुख—महाराज, एक आवश्यक समाचार सुनाने के लिए ही मैं उपस्थित हुआ हूँ। आप ध्यान से सुनें :—

जम्बुद्वीप में विन्ध्याचल नाम का एक पर्वत है। उस पर चित्रकर्ण नाम का एक मयूर राज्य करता है। उसकी राजधानी का नाम है दग्धारण्य। मैं भ्रमण करता हुआ वहीं पहुँच गया। वह स्थान मुझे बहुत रमणीक प्रतीत हुआ। अतः वहीं निश्चिन्त होकर घूमने लगा। मुझे इस तरह घूमते देखकर वहाँ के गुप्तचर मेरे पास आए और मुझ से पूछा :—

तुम कौन हो ?

मैंने कहा—मैं कर्पूरद्वीप के चक्रवर्ती राजा हिरण्यगर्भ का सेवक हूँ। देश-विदेश घूमने की इच्छा से मैं यहाँ आया हूँ।

इतना सुनना था कि सब ने मुझे चारों ओर से घेर लिया और प्रश्न करने लगे।

एक ने पूछा—आपके और हमारे देश में आपको कौन-सा देश सुन्दर प्रतीत हुआ, कौन-सा राज्य अधिक भाग्यशाली दिखाई पड़ा।

मैं बोला—आप यह क्या कहते हैं ? आपके देश और हमारे

देश में, आपके राजा और हमारे राजा में पृथ्वी-आकाश का अन्तर है। हमारा देश स्वर्ग है। हमारे देश का राजा हिरण्यगर्भ दूसरा इन्द्र है। आप लोग इस मरु-भूमि में रहकर क्या करते हैं। चलिए, हमारे राज्य में चलिए।

इतना सुनना था कि सब क्रोध से पागल हो उठे। किसी ने ठीक कहा है—

'पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विष वर्धनम्।'

वैसे तो दूध से सबको लाभ ही होता है। पर यदि सर्प को पिलाया जाए तो उसका तो विष ही बढ़ता है। इसी प्रकार किसी मूर्ख को अच्छी बात समझाने से उसको क्रोध ही आता है। जैसे कि बन्दरों को उपदेश देने से पक्षी दुखी हुए।"

राजा—"कैसे?"

दीर्घमुख—"सुनो महाराज!"

२.

मूर्ख को उपदेश

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ।

. . . .

मूर्खों को उपदेश देने से उनका क्रोध बढ़ता ही है, शान्त नहीं होता ।

. . . .

नर्मदा नदी के तट पर एक बड़ा भारी सेमर का वृक्ष था। उस पर बहुत से पक्षी रहा करते थे ।

वर्षाऋतु में एक दिन मूसलाधार पानी बरसने लगा। सब पक्षी अपने-अपने घोंसलों में बैठ गये। बन्दर भी अपने-अपने झुण्ड बनाकर वृक्षों की छाया की ओर दौड़े। बहुत से बन्दर सेमर के वृक्ष के नीचे भी आकर बैठ गये ।

वर्षा के साथ-साथ वायु भी चलने लगी। शीत के कारण वृक्ष के नीचे बैठे बन्दर काँपने लगे। उन्हें इस भांति आपत्ति-ग्रसित देखकर सेमर वृक्ष पर रहनेवाले पक्षी उन्हें समझाते हुए बोले—

"भाई वानरो ! वर्षा समय की इस सरदी से तुम शिक्षा लो। तुम हमारी ओर देखो, हमारे तो हाथ भी नहीं हैं। बस केवल

चोंच ही है। हम इसी से सब काम करते हैं। परन्तु फिर भी हमने अपने परिश्रम से यह नीड़ बनाया और आज सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं। तुम भी क्यों नहीं अपना घर बनाते ?"

पक्षियों की बातें सुनते ही बन्दरों की त्यौरियाँ चढ़ गईं। आँखें दिखाते हुए वे क्रोध से बोले—

"हमको कष्ट में देखकर तुम लोग हमारा उपहास करते हो। पानी थमते ही हम तुम्हें देख लेंगे।"

कुछ समय बाद वर्षा रुक गई। बन्दर पानी रुकते ही पेड़ पर चढ़ने लगे। वानरों को अपनी ओर आते देखकर सब के सब पक्षी अपने-अपने नीड़ों को छोड़कर भाग चले। बन्दरों ने सब के नीड़ नष्ट कर दिये।

दीर्घ-मुख की कथा सुनकर राजा बोला—

"अच्छा, तो उन पक्षियों ने फिर क्या किया ?

दीर्घमुख—"तब वह क्रोध से बोले—तुम्हारे हिरण्यगर्भ को किसने राजा बनाया ?"

मैंने भी कहा—"तुम्हारे चित्रग्रीव को किसने राजा बनाया ? इतना सुनना था कि वे सब मुझ पर टूट पड़े। तब मैंने भी अपना पराक्रम दिखाया।"

हिरण्यगर्भ—"तुमने यह ठीक नहीं किया दीर्घमुख ? अपने तथा शत्रु के बल को बिना जाँचे ही जो झगड़ा कर लेता है उसे सदा नीचा देखना पड़ता है। विश्वास न हो तो चीते की खाल ओढ़कर खेत खाने वाले गधे की कहानी सुनाता हूँ।"

३.

नक़ल के लिये भी अक़ल चाहिए

आत्मनश्च परेषां च यः समीक्ष्य बलाबलम् ।
अन्तरं नैव जानाति स तिरस्क्रियतेऽरिभिः ॥

. . . .

अपनी और शत्रु की सामर्थ्य को जो नहीं जानता
उसे शत्रुओं से नीचा देखना पड़ता है ।

. . . .

हस्तिनापुर में विलास नाम का एक धोबी रहाता था। वह बड़ा लोभी था। अपने गधे से काम तो लेता था, पर उसे भोजन पेट भर नहीं देता था। इस प्रकार गधा कुछ ही दिनों में इतना निर्बल होगया कि उससे काम भी नहीं किया जाता था। चलते-चलते मार्ग में ही गिर पड़ता। इस प्रकार धोबी को हानि भी बहुत उठानी पड़ती।

बहुत सोच-विचारकर धोबी कहीं से मरे हुए चीते की खाल ले आया। उस चीते की खाल को उसने गधे को पहना दिया और उसे खेतों में छोड़ दिया। खेत के रखवाले इसे दूर से देखते

ही डर से उसे चीता समझकर उसके पास न फटकते। गधा मजे से खेतों में चरता फिरता।

धीरे-धीरे यह बात सारे गाँव में फैल गई। कई किसानों ने तो खेतों पर जाना भी छोड़ दिया। इसीतरह कुछ दिनों में ही गधा फिर से मोटा-ताजा होगया।

एक दिन किसी किसान ने सोचा—यह चीता अब कहाँ से आने लगा। पहले तो यह कभी आता नहीं था। उसने एक काला कम्बल ओढ़ लिया और हाथ में तीर कमान लेकर झुककर खड़ा होगया। गधा धीरे-धीरे चरता हुआ उधर निकला। उसने दूर से ही इस किसान को देखा। जरूर यह भी कोई गधा है, यह सोचकर गधा अपने स्वर में चिल्लाता हुआ किसान की ओर दौड़ा। तब तो किसान ने खेल ही खेल में उसका काम तमाम कर दिया।

इसीलिये मैं कहता हूँ कि अपने और दूसरे के बल को अवश्य देख ले।

× × × ×

दीर्घकर्ण—"इसके बाद वे बोले--मूर्ख बगुले! तू हमारे राज्य में ही विचर रहा है और हमारी ही बुराई करता है? यह कहकर वे मुझे अपनी चोचों से मारने लगे और बोले—बगुले! सुन, तेरा राजा भी तो बहुत कोमल है? वह अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता फिर राज्य की क्या रक्षा करेगा। तू तो मूर्ख है! यदि किसी वृक्ष के नीचे ही रहना है तो कोई बड़ा भारी वृक्ष खोजना

चाहिये। क्योंकि यदि भाग्यवश वह फल न दे तो क्या ? उसकी छाया तो कोई नहीं छीन लेता ? किस राजहीन के राज्य में तू रहता है ? सदा किसी पराक्रमी राजा के आश्रय में रहना चाहिये। क्योंकि सिंह की अनुकम्पा से प्राय: बकरी भी वन में निश्चिन्त घूमती है। और फिर बड़े आदमियों का तो नाम भी बड़ा होता है। देखो चन्द्रमा के नाम-मात्र से खरगोशों ने हाथी से अपनी रक्षा की।

मैंने पूछा—"कैसे ?"

एक पक्षी बोला—"सुनो—

४.

बड़े का नाम, छोटे का काम

व्यपदेशेऽपि सिद्धिःस्यादतिशक्ते नराधिपे ।

. . . .

शक्तिमान् राजा के नाम से ही दुष्कर कार्य भी सिद्ध हो जाता है ।

. . . .

एक बार वर्षा न होने के कारण सुदीर्घ नाम का वन सूख-सा गया। वन के निवासी बिलखने लगे। छोटे-छोटे तालाब तो सूख-कर मैदान हो गये। प्यासे पशुओं और पक्षियों के झुण्ड-के-झुण्ड इधर-उधर प्यास से भागते दिखाई पड़ते। वन में रहनेवाले हाथी भी बेचैन हो गये और एक झुण्ड बनाकर अपने राजा विशालकर्ण के पास गये और बोले—

"महाराज ! हम प्यास से मरे जा रहे हैं। नहाने के लिए जल नहीं मिलता। बिना नहाये तो हमारा जीवन ही बीतना कठिन हो रहा है।"

विशालकर्ण भी चिन्तित हो गया। उसने बड़े प्रयत्न से उन्हें शोर मचाने से रोका। और बोला—

"आप लोग चिन्ता न करें। मैं इस विषय में पहले से ही चिन्तित हूँ। आप लोग मेरे साथ चलें। मैं आप लोगों को पास ही एक सरोवर दिखाता हूँ। वह इस वन में सब से बड़ा सरोवर है। उसका जल कभी भी समाप्त नहीं हो सकता।"

इतना कहकर विशालकर्ण उन सबको एक तालाब पर ले गया। उस दिन से सारे वन के हाथी उसी तालाब पर जाने लगे।

तालाब के किनारे खरगोशों का एक दल रहता था। हाथियों के आने-जाने से कई खरगोश नित्य उनके पैरों के नीचे आकर मर जाया करते। हाथियों ने इसकी कभी भी चिन्ता न की। पर खरगोश भला कब चुप रह सकते थे। उन्होंने एक सभा की और अपने परिवार की रक्षा का उपाय सोचने लगे।

उसी समय विजय नाम का एक बूढ़ा खरगोश उठा और बोला—

"भाइयो, आप दुःख न करें। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इन हाथियों का तालाब पर आना ही बन्द कर दूँगा।"

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वह विशालकर्ण की ओर चला और एक ऊँची चट्टान पर बैठकर विशालकर्ण हाथी से बोला—

विजय—राजन्, मैं विजय नाम का खरगोश हूँ। भगवान् चन्द्रमा का सेवक हूँ। उन्होंने मुझे अपना दूत बनाकर तुम्हारे पास भेजा है।

भगवान् चन्द्रमा का नाम सुनते ही विशालकर्ण के आश्चर्य की सीमा न रही। वह बोला—

"आज चन्द्र भगवान् को मुझ से कौनसा काम आ पड़ा ? चन्द्र भगवान् ने मुझे क्या आज्ञा दी है ?"

विजय—राजन् ! मैं दूत हूँ। मैं कभी भी असत्य नहीं बोलूँगा। क्योंकि मुझे मृत्यु का भय तो है ही नहीं। भगवान् चन्द्र के वचनों को मैं आपके सामने दुहराता हूँ। उन्होंने कहा है—

"तुमने चन्द्रसरोवर के रक्षक खरगोशों को निकालकर अच्छा नहीं किया। क्या तुम्हें यह नहीं मालूम कि मैं खरगोशों की रक्षा करता हूँ। मूर्ख देख, खरगोशों की रक्षा के कारण ही तो मेरा नाम शशांक पड़ा है। मेरी आज्ञा है कि तुम इस सरोवर पर जाना बन्द कर दो क्योंकि इस भांति खरगोशोंका नाश होता है।"

भगवान् चन्द्र की यह आज्ञा सुनकर हस्तिराज विशालकर्ण भयभीत हो गया। वह चन्द्रमा की ओर हाथ जोड़कर कहने लगा—

"महाराज शशांक, मुझे क्षमा करें। मैंने यह सब जान-बूझकर नहीं किया। भविष्य में ऐसा अपराध न होगा।"

विजय—"यदि ऐसा ही है तो तुम मेरे साथ उस सरोवर तक चलो जहाँ भगवान् चन्द्र क्रोध में लाल होकर कांप रहे हैं।"

चतुर खरगोश विशालकर्ण को उसी सरोवर पर ले गया। जल में हिलते हुए चन्द्रमा को दिखाकर बोला—

"देखो, भगवान् कितने क्रोधित हैं। इन्हें प्रणाम करो।"

विजय की बात सुनकर विशालकर्ण ने सरोवर में हिलते हुए चन्द्र को प्रणाम किया।

विजय ने भी चन्द्रमा से प्रार्थना की कि इस बार विशालकर्ण को क्षमा किया जाये। यह भविष्य में ऐसा अपराध कभी भी नहीं करेगा।

बेचारा विशालकर्ण फिर कभी उस सरोवर की ओर नहीं गया।

× × × ×

वह पक्षी फिर बोला—"इसीलिये मैं कहता हूँ कि किसी महा-प्रतापी राजा का आश्रय लेना चाहिए।"

तब मैंने कहा—"जैसा तुम कहते हो ठीक वैसा ही प्रतापी हमारा राजा राजहंस है।"

इतना सुनना था कि उन लोगों ने मुझे पकड़ लिया और अपने राजा के पास ले जाकर बोले—

"महाराज, यह कर्पूरद्वीप में रहने वाले हिरण्यगर्भ नाम के राजहंस का सेवक है।"

उसी समय गृद्ध बोला—

"तुम्हारे राजा का मन्त्री कौन है?" मैंने कहा—"सर्वज्ञ नाम का चक्रवाक!" एक तोता जो वहीं बैठा था, बोला—"महाराज, कर्पूरद्वीप आदि छोटे-छोटे द्वीप जम्बूद्वीप के ही अन्तर्गत हैं। वहाँ भी आपका ही राज्य है।"

मैंने कहा—"अगर केवल मुँह चलाने से ही राज्य हो जाता है तो जम्बूद्वीप में भी हमारा ही राज्य है।"

राजा बोला—"इसका निर्णय कैसे होगा?"

मैंने कहा—"युद्ध ही इसका निर्णय कर सकता है।"

राजा—"जाओ, अपने स्वामी को युद्ध के लिए तैयार करो।"

इतना कहने के बाद राजा ने अपने प्रिय सेवक तोते को अपना दूत बनाकर मेरे साथ भेजना चाहा। पर तोता बोला—

"महाराज, मैं इस दुष्टके साथ कभी भी नहीं जाऊँगा। क्योंकि नीति कहती है कि कभी भी दुष्ट का संग नहीं करना चाहिए। अन्यथा वही हाल होता है जो कौए के साथ चलने और रहने से हंस का और बटेर का हुआ।"

राजा—"वह कैसे ?"

तोता बोला—"सुनो महाराज।"

५

दुष्ट का साथ न दो।

न स्थातव्यं न गन्तव्यं दुर्जनेन
समं क्वचित्।

. . . . .

दुष्ट के साथ न तो ठहरना चाहिए
और न कभी उसके साथ कहीं जाना
ही चाहिए।

. . . . .

उज्जयनी नगर के मार्ग में एक पीपल का वृक्ष था। उस पर एक कौआ और एक हंस रहते थे। वृक्ष की छाया इतनी विशाल थी कि पथिक उसके नीचे विश्राम किया करते थे।

एक दिन एक शिकारी उसी मार्ग से जा रहा था। ग्रीष्म ऋतु थी। मार्ग तय करना कठिन हो रहा था। शिकारी उस वृक्ष की छाया के नीचे पहुँचा और अपना धनुष-बाण एक ओर रखकर विश्राम करने लगा। उसे नींद आ गई और वह सो गया। अचानक निद्रा में उसका मुँह खुल गया। धीरे-धीरे वृक्ष की छाया का रुख भी बदला और सूर्य की गर्म किरणें उसके मुँह पर पड़ने लगीं। शिकारी की इस अवस्था पर हंस को दया आई।

उसने अपने पंख फैला लिए और इस भाँति वृक्ष की शाखा पर बैठ गया कि शिकारी के मुँह पर छाया हो गई।

दुष्ट कौआ भला कब यह सब देख सकता था ? वह अपने स्थान से उड़ा और ठीक शिकारी के मुंह के ऊपर जाकर उसने विष्ठा कर दी। स्वयं वहाँ से उड़ गया। इस कुकृत्य के कारण शिकारी की नींद टूट गई। पर हंस अपने स्थान से न उठा। वह सोचने लगा–"मैं तो शिकारी के साथ उपकार कर रहा था, उसका अपकारी तो कौआ है। अतः वह मुझे क्यों मारने लगा।' हंस इस प्रकार सोच ही रहा था कि शिकारी ने मुँह उठाकर ऊपर देखा। हंस को ठीक अपने मुंह पर बैठा देखकर उसने उसको ही अपना अपराधी समझा क्रोध में आकर शिकारी ने एक ही तीर से हंस को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया।

इतना कहकर तोता बोला—"महाराज, अब कौए और बटेर की कहानी सुनें—"

६.

करे कोई और भरे कोई

एक बार भगवान् गरुड़ यात्रा करते हुए समुद्र तट पर आ रहे थे। उनके दर्शनार्थ स्थान-स्थान से पक्षियों के समूह समुद्र तट की ओर चले। किसी वन में एक कौआ और बटेर परस्पर मित्र की भाँति रहते थे। उन्होंने भी समुद्र की ओर प्रयाण करने का निश्चय किया।

दोनों समुद्र की ओर चल दिये। रास्ते में कौए ने देखा कि कोई ग्वालिन अपने सिर पर दही की हांड़ी रखे हुए जा रही थी। फिर क्या था? कौए ने तेजी से पंखों को चलाना प्रारम्भ किया। भोली बटेर भी उसका साथ निभाने की इच्छा से पीछे-पीछे उड़ने लगी। ग्वालिन के पास पहुँचकर कौआ उसकी हांड़ी पर बैठ गया। बटेर भी बैठ गई। पर उसने कौए की भाँति चुराकर दही खाना उचित न समझा। थोड़े समय बाद ग्वालिन का घर आ गया। उसने हांड़ी नीचे उतारी। कौए और बटेर को हांड़ी पर बैठा देखकर उसने उन्हें उड़ाने के लिए हाथ उठाया। कौआ तो उसी समय उड़ गया, पर अपने को निरपराध समझकर बटेर धीरे-

धीरे ही चलती रही। फलस्वरूप उसे ग्वालिन ने पकड़ लिया और मार डाला।

× × × ×

तोता बोला—"इसीलिए मैं कहता हूँ कि दुष्ट बगुले के साथ नहीं जाऊँगा।"

दीर्घमुख—"तत्पश्चात् वहाँ के राजा ने मेरा यथोचित सत्कार करके मुझको विदा कर दिया और मेरे पीछे ही तोते को भेज दिया। वह भी मेरे पीछे-पीछे आ रहा होगा।"

दीर्घमुख की बात सुनकर राजहंस का मंत्री चक्रवाक हँसकर बोला—

"महाराज, इसने दूसरे के राज्य में जाकर भी राजकार्य ही किया है, पर उसमें मूर्खता के अतिरिक्त और है ही क्या ?"

हिरण्यगर्भ-"अब बीती बातों में क्या रखा है ? इस समय तो प्रस्तुत विषय पर ही विचार-विमर्श करना चाहिये।

चक्रवाक-"महाराज, नीति कहती है कि आप अपने गुप्तचर भेजें जो कि शत्रु का समस्त समाचार हमें भेजते रहें। पर यह गुप्तचर ऐसे होने चाहिएँ जो जल और थल दोनों पर ही चल सकें। मेरे विचार से इस बगुले को ही भेजना चाहिए।

इतने में ही द्वारपाल ने आकर निवेदन किया :—

द्वारपाल-"महाराज, जम्बुद्वीप से कोई तोता आया है, आप से मिलना चाहता है।"

मन्त्री—उसे अतिथिशाला में ठहरा दो।

हिरण्यगर्भ—"तोते के आने से पहले ही हमें अपने क़िले का निर्माण कर लेना चाहिए। सारस को इस कार्य के लिए नियुक्त करो।"

मन्त्री—"महाराज, आप चिन्ता न करें। यह जलाशय ही हमारा क़िला है। इसमें केवल भोजन की कमी है।"

द्वारपाल ने फिर सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा—

"महाराज, सिंहलद्वीप से मेघवर्ण नाम का कौआ उपस्थित हुआ है।"

हिरण्यगर्भ—"कौआ चतुर एवं नीतिज्ञ होता है। उसका इस समय आना उचित ही हुआ।"

मन्त्री—"ऐसा न कहें महाराज, कौआ पर-पक्ष का है। अपने पक्ष को छोड़कर पर-पक्ष से मिलने वाले की नीलरंग वाले गीदड़ जैसी दशा होती है।"

राजा बोला—"कैसे ?"

चक्रवाक—"सुनिये महाराज !"

७

धोबी का कुत्ता, घर का न घाट का

आत्म पक्षं परित्यज्य पर पक्षेषु यो रतः
स परैर्हन्यते मूढ़ोः...

अपने पक्ष को छोड़कर जो दूसरे दल का हित सोचे
उसे दूसरे दल के लोग भी मार देते हैं।

एक दिन कर्बुर नाम का गीदड़ गाँव की ओर निकल पड़ा। रात का समय था और तिसपर अमावस्या का अन्धकार। कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। चलते-चलते वह किसी धोबी के नील भरे बर्तन में गिर पड़ा। उसने बार-बार प्रयत्न किया, पर वह उससे निकल ही नहीं पाया। रात बीतती जा रही थी। गीदड़ को लगता जैसे उसकी मुसीबत पास आ रही हो। धोबी आयेगा और पीटेगा। यह विचार उसका खून सुखा रहा था। उससे जो कुछ बन पड़ा उसने किया। पर फिर भी निकल न सका।

धीरे-धीरे तारे ऊषा की लाली में घुलने लगे। तभी अचानक गीदड़ को कुछ सूझी। वह उसी समय इस तरह लेट गया मानो मर गया हो। धोबी आया, गीदड़ को मरा हुआ देखकर

उसने उसे उठाया और कुछ दूर पर फेंक आया। गीदड़ भी सिर पर पैर रखकर भाग खड़ा हुआ।

भागते-भागते वह बहुत दूर निकल गया। वृक्ष के नीचे बैठकर वह विश्राम करने लगा। वह सोचने लगा—'अब मेरा शरीर नीला तो हो ही गया है क्यों न इससे कोई लाभ उठाऊँ।' कुछ समय इसी प्रकार सोचकर वह उठा और अकड़कर गीदड़ों के पास जाकर बोला—

"हे वनवासियो, मेरी ओर देखो। वन-देवता ने समस्त बूटियों का रस निकालकर मुझे स्नान कराया है। अतएव मेरा सुन्दर शरीर अब नीला पड़ गया है। वन देवता ने मुझे आशीष देते हुए इस वन का राज्य भी सौंप दिया है। आप लोगों के लिये मेरी आज्ञा है कि आज से आप लोग मेरे शासन में रहें और अपने को मेरी प्रजा समझें।"

वन के समस्त गीदड़ों ने तथा व्याघ्र, चीता, शेर आदि सब पशुओं ने गीदड़ को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उसे दैवी शक्ति का प्रतिनिधि समझकर अपना राजा स्वीकार कर लिया।

एक समय राजा कर्बुर की राजसभा आयोजित थी। वन के सिंहादि सब पशु उसमें उपस्थित थे। कर्बुर अहङ्कार में चूर हो गया और उसने अपने साथी गीदड़ों का तिरस्कार कर दिया। गीदड़ भला यह कब सह सकते थे। उन्होंने मिलकर एक और सभा का आयोजन किया। सभा में एक गीदड़ ने कहा—

"भाइयो, मैं विश्वास दिलाता हूँ कि इसे सिंह आदि बलवान्

पशुओं के हाथ अवश्य ही मरवा दूँगा।

इतना कहकर सायंकाल के समय अन्य गीदड़ों को लेकर वह गीदड़ कबु र की ओर चला। कबु र सिंह आदि पशुओं के साथ कुछ मन्त्रणा कर रहा था। इन गीदड़ों ने जाकर उसे चारों ओर से घेर लिया और जोर-जोर से रोना प्रारम्भ कर दिया। गीदड़ों का शब्द सुनकर कबु र से भी न रहा गया। स्वभावतः वह भी गीदड़ों के साथ-साथ शब्द करने लगा।

कबु र का स्वर सुनते ही सिंह आदि पशुओं को भी यह पता चला गया कि यह साधारण गीदड़ है। अतः उन्होंने चिढ़कर उसे मार डाला।

× × ×

मन्त्री बोला—"इसीलिये मैं कहता हूँ कि अपना पक्ष छोड़कर आए हुए व्यक्ति का क्या विश्वास ?"

राजा—फिर भी दूर से आए हुए अतिथि का स्वागत तो करना ही चाहिए। इसे अपने साथ रखना है अथवा नहीं, इस विषय पर बाद में विचार किया जायगा।

सारस ने आकर सूचना दी—महाराज, दुर्ग भली-भांति तैयार होगया।

राजा—तो तोते को हमारे सामने उपस्थित किया जाए।

राजदूत तोता दरबार में लाया गया। उसे हिरण्यगर्भ के आसन से दूर ही आसन दिया गया। वह अपने आसन पर अकड़कर बैठ गया।

दूत—हे हिरण्यगर्भ ! जम्बुद्वीप से महाराजाधिराज श्री चित्र-वर्ण तुम्हें आज्ञा देते हैं कि यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो शीघ्र ही जम्बुद्वीप आकर हमारे चरणों में शीश झुकाओ। यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो शीघ्र ही कपूरद्वीप छोड़कर कहीं और चले जाओ। क्योंकि कपूरद्वीप भी जम्बुद्वीप के शासन के अन्तर्गत है।

दूत के वचन सुनते ही हिरण्यगर्भ के क्रोध की सीमा न रही। वह क्रोध में भरकर बोला—

"है कोई जो इस दुष्ट की गर्दन पकड़कर इसे सभा-भवन से बाहर निकाल दे ?"

यह सुनते ही मेघवर्ण नाम का कौआ खड़ा होकर सगर्व बोला—

"महाराज, यदि आज्ञा हो तो मैं इस दुष्ट तोते को अभी यहीं पर मार डालूँ।"

सभा की ऐसी गम्भीर परिस्थिति देकखर मन्त्री चक्रवाक राजा और मेघवर्ण को शान्त करते हुये बोला—

'दूत को नहीं मारना चाहिए। क्योंकि वह अपनी ओर से कुछ भी नहीं कहता। वह जो कुछ भी कहता है राजा के वचन ही कहता है। फिर इनका तो कार्य भी यही है। वह तो चाहे शस्त्र ही उठे हुए हों कभी भी असत्य नहीं बोलेगा।"

इस प्रकार चक्रवाक ने राजा और कौए को समझाया। दोनों के शान्त होने पर राजदूत तोते को प्रसन्न करके वापस जम्बुद्वीप भेज दिया गया।

चित्रवर्ण ने तोते से पूछा—"दूत, कर्पूरद्वीप कैसा देश है ? वहाँ का राजा कैसा है ?"

तोता—"महाराज, कर्पूरद्वीप के विषय में अब आप क्या पूछते हैं। वास्तव में कर्पूरद्वीप दूसरा स्वर्ग है और हिरण्यगर्भ दूसरा इन्द्र ! अब तो आप शीघ्र ही युद्ध की तैयारी करें और कर्पूरद्वीप को अपनी राजधानी बनाएँ।"

चित्रवर्ण ने अपने सेनापति को सेना सुसज्जित करने की आज्ञा दी और कोषाध्यक्ष को आज्ञा दी कि वह बहुत-सा कोष तैयार करे जो कि युद्ध में साथ-साथ चलेगा। जिससे कि समय-समय पर सेना को पुरस्कार आदि देकर प्रसन्न किया जा सके। क्योंकि कहा—

'न नरस्य नरो दासः दासस्यत्वर्थस्य भूपते.'

'कोई भी किसी का सेवक नहीं होता। सब पैसे की सेवा करते हैं।'

शुभ मुहूर्त में राजा चित्रवर्ण की सेना ने कर्पूरद्वीप की ओर प्रस्थान किया।

× × × ×

हिरण्यगर्भ के दरबार में एक दिन एक दूत ने आकर सूचना दी—

'महाराज, राजा चित्रवर्ण इस समय अपनी सेना को साथ ले युद्ध करने के लिए मलयगिरि की तराई में ठहरा हुआ है। उसके मन्त्री को यह कहते भी सुना गया है कि उन्होंने हमारे

क़िले में कोई गुप्तचर भी लगा दिया है। अतः क़िले की जहाँ तक हो सके देख-रेख करनी चाहिए।'

मन्त्री—"महाराज, यह गुप्तचर कौआ ही हो सकता है।"

राजा—"हो सकता है कि तुम्हारा अनुमान असत्य हो। क्योंकि यदि वह शत्रु का पक्षपाती है तो तोते के साथ क्यों लड़ने लगा था? अब भी वह युद्ध का नाम सुनते ही लड़ने को कमर कसे बैठा रहता है।"

मन्त्री—"फिर भी बाहर से आए व्यक्ति पर शंका होती ही है।"

राजा—"कभी-कभी बाहर से आये हुये भी उपकारी हो जाते हैं। सुनो, मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ।"

८.

कर्तव्य-पालन

परोऽपि हितवान्बन्धुरप्यहित: पर: ।

भलाई करने वाला पराया भी भाई
समान होता है । और भाई भी यदि
अहित चाहे तो शत्रु ही है ।

एक दिन राजा शूद्रक की राजसभा में वीरवर नाम का एक राजकुमार उपस्थित हुआ । राजा ने उससे सप्रेम पूछा—

"कहो राजकुमार, तुम कौन से देश से और राजसभा में किस कारण से पधारे ?"

राजकुमार—महाराज, मेरा नाम वीरवर है । मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ । अत: कृपया आप मुझे अपना सेवक स्वीकार करें ।"

राजा—"तुम कितना वेतन लोगे राजकुमार !"

वीरवर—"पाँच सौ सुवर्ण मुद्रा प्रतिदिन लूँगा ।"

राजा —"तुम्हारी सेवा की सामग्री क्या है ?"

वीरवर —"महाराज, केवल दो बाहु और एक तलवार ।"

राजा—यह सम्भव नहीं है।

राजकुमार वीरवर सभा से चल दिया। शूद्रक के मन्त्रियों ने वीरवर का वेतन और उसकी सामग्री देखकर राजा को सलाह दी कि महाराज इस राजकुमार को चार दिन का वेतन देकर नियुक्त कर लेना चाहिए। देखते हैं कि यह किस कार्य का व्यक्ति है। मन्त्रियों की बात सुनकर राजा ने वीरवर को वापस बुला लिया और उसे चार दिन का वेतन देकर अपनी सेवक वृत्ति पर नियुक्त कर दिया।

राजा ने वीरवर के पीछे गुप्तचर नियुक्त कर दिये। जिन्होंने वीरवर के व्यय का व्यौरा बतलाते हुए कहा—"महाराज, वीरवर ने अपने वेतन का आधा भाग देव-पूजन तथा यज्ञादि में दान कर दिया। शेष का आधा देश के निर्धनों की सहायता में लगा दिया। बाकी का उसने उपभोग किया। और फिर आपके द्वार पर खड़ा हो गया। उसके हाथ में तलवार थी और कुछ भी न था।"

राजा शूद्रक ने देखा वीरवर सदा नंगी तलवार लिए उसके साथ रहता है। उसके भवन के अन्दर चले जाने पर स्वयं द्वार पर ही खड़ा रहता है।

एक दिन कृष्णपक्ष को चौदस की रात्रि को राजा शूद्रक अपने रनिवास में सो रहा था। अचानक किसी के रोने का स्वर सुनकर उसकी निद्रा भंग हो गई। वह उठकर बैठ गया। अब उसे रुदन का स्वर स्पष्ट सुनाई दे रहा था। वह किसी नारी का करुण-क्रन्दन था।

राजा ने पुकारा—द्वार पर कौन है ?

वीरवर—मैं हूँ महाराज, वीरवर हूँ।

राजा—जाओ, देखो वह अर्धरात्रि में कौन रो रहा है ?

वीरवर—जैसी महाराज की आज्ञा !

इतना कहकर वीरवर बिना सोचे-समझे ही चल दिया। वीरवर के चले जाने के कुछ ही क्षणों के उपरान्त राजा को विचार आया कि मैंने इस घोर अन्धकार में वीरवर को अकेले ही भेजकर अच्छा नहीं किया। भावी को कोई नहीं जानता ? कहीं वीरवर पर कोई मुसीबत न आजाए ? राजा स्वयं उठा और खड्ग हाथ में लेकर वीरवर के पीछे-पीछे चुपचाप चलने लगा। उसने देखा—

'उस घने अन्धकार में बहुमूल्य भूषणों से सुसज्जित एक रूपवती युवती को वीरवर ने देखा। वीरवर उसके पास गया और मीठे-मीठे शब्दों में उसे धैर्य दिलाते हुए बोला—देवि, तुम कौन हो? यहाँ अकेली क्यों बैठी हो ? रो क्यों रही हो ?'

स्त्री—"मैं राजा शूद्रक की राज्य-लक्ष्मी हूँ। बहुत समय तक इसके अधिकार में रही। अब किसी दूसरे राजा के पास जाना चाहती हूँ।"

वीरवर—"देवि, प्रत्येक हानि से बचने के उपाय हुआ करते हैं। आप इस राज्य को छोड़कर जा रही हैं। यह तो इस राज्य की सबसे बड़ी हानि है। क्या इससे बचने का कोई उपाय नहीं ?"

लक्ष्मी—हाँ है। पर क्या तुम उस उपाय को सिद्ध कर सकोगे ?

वीरवर—क्यों नहीं ? मैं जिसका अन्न खाता हूँ उसके लिए क्या नहीं कर सकता ?

लक्ष्मी—तब तो केवल एक ही उपाय है। तुम अपने पुत्र शक्तिधर को भगवती की बलि दे दो।

वीरवर—यह भी कोई कठिन काम है देवि ? जैसी आपकी आज्ञा।

लक्ष्मी अन्तर्ध्यान हो गई। वीरवर अपने निवास-स्थान की ओर उसी समय चल दिया। शूद्रक राजा भी उसी के पीछे चला। घर पहुँचकर वीरवर ने अपनी पत्नी एवं अपने पुत्र को सोते से जगाया। वीरवर ने आदि से लेकर अन्त तक की सारी की सारी सच्ची कहानी दोनों को सुना दी। पिता की बात सुनकर शक्तिधर प्रसन्न होकर बोला—

"पिताजी, मैं धन्य हूँ जो अपने राज्य और स्वामी के लिए काम आ रहा हूँ। अब आप बिलम्ब न कीजिए। मुझे शीघ्र ही भगवती के मन्दिर में ले चलिए। शास्त्रों में लिखा है—

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि परोपकार के लिए अपना धन और जीवन दोनों का समर्पण कर दे। फिर यह तो अपना ही काम है।"

शक्तिधर की माँ बोली, "यदि हमने इस समय भी बलि न दी

तो इस राज्य का इतना वेतन क्यों ले रहे हैं ?"

पुत्र और पत्नी की बात सुनकर वीरवर बहुत प्रसन्न हुआ। अपने पुत्र के सिर पर हाथ फेरते हुए बोला—"पुत्र, मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी। तुमने आज हमारे वंश का मस्तक ऊँचा कर दिया।"

वीरवर उन दोनों को साथ लेकर भगवती के मन्दिर में गया। राजा भी दीवार की आड़ में खड़ा होकर इनका कृत्य देखने लगा। वीरवर बोला—

"भगवती ! आप प्रसन्न हों। महाराज शूद्रक की जय हो। मेरा पुत्र आपकी बलि के लिए उपस्थित है। आप इसे स्वीकार करें। इतना कहकर वीरवर ने उसी तलवार से अपने पुत्र का गला काट दिया।"

वीरवर कुछ समय तक शान्त खड़ा रहा। फिर उसने सोचा—बिना पुत्र के मेरा जीवन भी निरर्थक है। अब क्या जीवन में मुझे ऐसा सौभाग्यशाली और पितृभक्त पुत्र प्राप्त हो सकेगा ? फिर इस अपुत्र जीवन से क्या लाभ ?

वीरवर ने तभी अपने ही खड्ग से अपनी हत्या कर ली। सती पत्नी भला फिर कैसे रह सकती थी। उसने भी उसी समय अपने पति के चरण-चिह्नों का अनुकरण किया।

इस भयानक नर-मेध को देखकर राजा के रोंगटे खड़े हो-गये। वह सोचने लगा—

मेरे जैसे तो सहस्रों प्राणी इस संसार में क्रमशः आते-जाते

रहते हैं। इस पर राजपुत्र के समान न तो कोई पैदा हुआ है और ना हो ही सकेगा। फिर मेरे जीवन से क्या लाभ? जिसने वीरवर जैसे सेवक को हाथों से खो दिया।

दु:खी होकर राजा ने भी अपना सिर काटने के लिये तलवार उठाई। परन्तु उसी समय सर्वमंगला देवी ने प्रकट होकर राजा का हाथ पकड़ लिया, और बोली—

"राजन्, मैं तेरे साहस से अधिक प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी मृत्यु के बाद भी तुम्हारी राज्य-लक्ष्मी युगों तक अविचल रहेगी।"

भगवती को साष्टांग प्रणाम करते हुए राजा बोला—"भगवति! मुझे अपना जीवन अथवा राज्य नहीं चाहिये। यदि आप प्रसन्न हैं तो कृपा करके इन तीनों को पुन: जीवित कर देवें।"

भगवती ने प्रसन्न होकर सब को जीवित कर दिया।

प्रात:काल रनिवास से निकलते हुए राजा ने वीरवर से पूछा—

"वीरवर, रात्री में कोलाहल क्यों हो रहा था?"

वीरवर—"महाराज, एक स्त्री रो रही थी। मुझे देखते ही वह न जाने कहाँ चली गई।"

राजा मुस्कराया और सोचने लगा—

कितना महान् व्यक्तित्व है इस राजकुमार का? यह सत्य है कि यह पराया है पर फिर भी अपने बन्धुओं से सौ गुना अच्छा है।

राजा ने राजसभा में वीरवर की सारी की सारी कहानी कह

सुनाई। फिर वीरवीर को बुलाकर कर्नाटक का राज्य उसे दे दिया।

× × × ×

हिरण्यगर्भ आगे बोला—"इसीलिये मैं कहता हूँ कि हो सकता है कि यह कौआ भी हमारे कल्याण के लिये ही आया हो।"

मन्त्री—"महाराज का विचार तो सत्य है पर नीति कहती है—

यदि किसी को पुण्यों के प्रभाव से कभी कोई सुख प्राप्त हुआ तो वैसा ही मुझे भी प्राप्त होजाए। इस भांति की कल्पना भी नहीं करनी चाहिये। धन की इच्छा से नाई ने जब ऐसा ही किया तो उसे मृत्यु प्राप्त हुई।"

हिरण्यगर्भ—मैं यह कथा सुनना चाहता हूँ।

मन्त्री—सुनो महाराज,

९.

नक़ल का दुष्परिणाम

पुण्याल्लब्धं यदेकेन तन्ममापि भविष्यति ।

. . . .

जो कुछ किसी ने पुण्य से प्राप्त किया, वह सब मुझे भी मिल जाय, यह लोभ मनुष्य को दुखी करता है ।

. . . .

अयोध्या में चूड़ामणि नाम का एक क्षत्रिय रहा करता था। दुर्भाग्य से वह निर्धन था। अत: उसे सदा धन की ही चिन्ता लगी रहती। एक दिन उसने भगवान् की तपस्या करके धन प्राप्त करने का निश्चय किया। वह वन में चला गया और आशुतोष भगवान् शंकर की उपासना करने लगा। भोलेनाथ भगवान् थोड़ी-सी ही तपस्या से प्रसन्न होगए और उन्होंने स्वप्न में उससे कहा—

"क्षत्रिय, मैं तेरी इस कठोर तपस्या से प्रसन्न हूँ। तुम्हें धन की कामना है तो तू कल प्रात:काल किसी नाई को बुलाकर क्षौर आदि करके अपने नगर की ओर चल देना। मार्ग में वट वृक्ष के नीचे

तुझे एक संन्यासी जाता हुआ मिलेगा। तू उसे डण्डे से खूब पीटना।"

प्रातःकाल होते ही क्षत्रिय ने एक नाई को बुलाया, क्षौर करवाकर वह उसी मार्ग की ओर चल पड़ा। उसके पीछे नाई भी हो लिया। कुछ ही समय बाद उसी मार्ग से एक भिक्षुक जाता हुआ दिखाई दिया। क्षत्रिय ने उसे पीटना प्रारम्भ किया। वह भिक्षुक पिटते-पिटते मणि-रत्नों से भरा हुआ एक सुवर्ण घट बन गया।

इस दृश्य को देखकर नाई ने विचार किया - धन पाने की तो यह बहुत ही आसान और सुन्दर रीति है। अगले दिन वह भी प्रातःकाल हाथ में डन्डा लेकर निकल पड़ा। संयोगवश उस दिन भी एक भिक्षुक उस ओर से जा रहा था। नाई ने उसे पीटना प्रारम्भ किया और इतना पीटा कि वह मर गया।

अयोध्या के राजा ने उसे इस अपराध में मृत्यु दण्ड दे दिया।

× × × ×

हिरण्यगर्भ—"अस्तु, छोड़ो इस झगड़े को। इस समय क्या करना चाहिए?"

मन्त्री—"मैंने अभी-अभी दूत से सुना है कि राजा चित्रवर्ण ने अपने महामन्त्री का तिरस्कार किया। इस अपमान के कारण महामन्त्री उसे त्यागकर वन को चला गया। अब हमें उसे मार्ग में घेर लेना चाहिए। इस भाँति वह दुष्ट शीघ्र ही पराजित हो जायगा।"

मन्त्री की मन्त्रणा के अनुसार राजा हिरण्यगर्भ ने अपनी

सेना समेत चित्रवर्ण को मार्ग में ही घेर लिया। दोनों पक्षों में भयङ्कर युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजा चित्रवर्ण के अनेकों सैनिक काम आए। उसके बहुत से सेनापति वीरगति को प्राप्त हुए। चित्रवर्ण को अन्त में हार मानकर पीछे हटना पड़ा। अपनी इस पराजय से चित्रवर्ण को बड़ा दुःख हुआ। वह महामन्त्री गृद्ध के पास गया और बोला –

"महामन्त्री, युद्ध के समय इस भाँति हमारी उपेक्षा करना तुम्हें उचित नहीं। यदि मैंने कभी तुम्हें कुछ कह भी दिया तो आपत्ति के समय उससे रुष्ट नहीं होना चाहिए।"

मन्त्री—"राजन्, तुम्हें राजकार्य में निपुणता नहीं। मूर्ख राजा भी यदि विद्वानों का आदर करता है तो उसे भी लक्ष्मी प्राप्त होती है। नदी के किनारे रहने वाला वृक्ष सदा हरा-भरा ही रहता है। आपने अपनी सेना और बल पर घमंड किया और मेरा अपमान किया। अतः आपको यह पराजय प्राप्त हुई।"

चित्रवर्ण हाथ जोड़कर मन्त्री से बोला—"मन्त्री; यह मेरा ही अपराध है। मैं अब आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे अब उचित सलाह दें। मेरे विचार में तो अब वापस अपने देश को ही जाना अच्छा होगा।"

मन्त्री—"राजन्! आप घबड़ाएँ नहीं। सन्निपात के बीमार के सामने वैद्य की कुशलता और शत्रु की सफल नीति को असफल बनाने में मन्त्री की कुशलता होती है। अच्छे समय में तो कौन कार्य-पटु नहीं होता? अब आप वापस लौटने का विचार न करें।

मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपको शत्रु पर विजय दिलाऊँगा।"

राजा—तो अब हम क्या करें ?

मन्त्री—शीघ्र ही राजहंस का क़िला घेर लो।

× × × ×

चित्रवर्ण और महामन्त्री के इस वर्तालाप को हिरण्यगर्भ के दूत ने सुन लिया और सब ठीक-ठीक आकर राजा से निवेदन किया। हिरण्यगर्भ ने अपने समस्त सैनिकों को क़िले की सुरक्षा की चेतावनी दे दी। उन्हें पर्याप्त मात्रा में पुरस्कार आदि भी बाँटे।

थोड़े समय पश्चात् मेघवर्ण नाम का कौआ हिरण्यगर्भ के पास आया और प्रणाम करके बोला—

"महाराज, इस समय शत्रु क़िले के मुख्य द्वार पर युद्ध के लिए प्रस्तुत है। अतः यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं बाहर जाकर अपना बल और पौरुष दिखलाऊँ।"

मन्त्री—"यदि बाहर जाकर ही युद्ध करना था तो फिर क़िले में क्यों ठहरे ? तुम नीति नहीं जानते। जल से निकलकर नाका बलहीन हो जाता है। वन से निकलकर सिंह भी गीदड़ हो जाता है और क़िले से निकलकर महान् से महान् पराक्रमी योद्धा भी हार जाता है।"

इस तरह मन्त्री ने मेघवर्ण को वहीं क़िले में रोक लिया। हिरण्यगर्भ के सब सैनिक भी क़िले के द्वार पर जाकर युद्ध करने लगे। थोड़ी देर में जब सब लोग युद्ध में अपनी सुध-बुध खो

बैठे तो अचानक कौए ने क़िले में आग लगा दी। आग लगते ही क़िले में से 'क़िला जीत लिया' का उच्चस्वर सुनाई दिया। समस्त जलचर तो पानी में घुस गए, पर बेचारा हंस मन्दगति होने के कारण न घुस पाया। उसे चित्रवर्ण के सेनापति कुक्कुट ने आकर सारस समेत घेर लिया। सारस हिरण्यगर्भ से बोला—

"महाराज, अब भागना शोभा नहीं देता। भागने के उपरान्त भी तो एक न एक दिन मर ही जाना है। फिर क्यों न युद्ध में ही लड़ते-लड़ते प्राण त्याग दिये जाएँ।"

सेनापति कुक्कुट ने अपने प्रहारों से हिरण्यगर्भ को बहुत घायल कर दिया। तभी सारस ने अपनी लम्बी चोंच से कुक्कुट पर प्रहार किए और अपने पंखों से राजहंस को जल में जोर से ढकेल दिया। तदनन्तर सारस ने बहुत पराक्रम दिखाया। परन्तु अन्त में सब पक्षियों ने मिलकर सारस को मार डाला।

चित्रवर्ण क़िले की समस्त धनराशि को लेकर जयघोष के साथ अपनी राजधानी को लौट गया।

राजकुमार बोले—"सारस कितना योग्य था, जिसने अपने प्राणों की भी चिन्ता न की और स्वामी को बचाया।"

विष्णुशर्मा—भगवान् उसे स्वर्ग प्रदान करे।

॥ तृतीय खण्ड समाप्त ॥

चतुर्थ खण्ड—

वृत्ते महति संग्रामे राज्ञोः निहित सेनयोः
स्थेयाभ्यां गृद्ध चक्राभ्यां वाचः सन्धिः कृतः क्षणात्।

. . . .

युद्ध में दोनों राजाओं की सेनाओं के नष्ट हो जाने
पर गृद्ध और चकवे ने मध्यस्थ होकर हंस और मयूर
की सन्धि करा दी।

. . . .

इस खण्ड की कथा-सूची

कथा प्रारम्भ होने के साथ राजपुत्रों ने विष्णुशर्मा से निवेदन किया--

"गुरुदेव ! हमने विग्रह सुन लिया। हमने सुना है कि राजा लोग परस्पर में सन्धि भी कर लेते हैं। अतः हमें सन्धि-प्रकरण सुनाएँ।"

विष्णुशर्मा--सुनो ! मैं तुम्हें उन्हीं राजहंस और मयूर की सन्धि सुनाता हूँ जिनकी लड़ाई तुमने विग्रह में सुनी है।

१.

समबल शत्रु से सन्धि करे

वृत्ते महति संग्रामे राज्ञोर्निहित सेनयोः
स्थेयाभ्यां गृद्ध चक्राभ्यां वाचा सन्धिः कृतः क्षणात्

. . . .

युद्ध में दोनों राजाओं की सेना नष्ट हो जाने पर गृद्ध और चकवे ने मध्यस्थ होकर हंस और मयूर की सन्धि करा दी।

. . . .

दुर्ग पर चित्रवर्ण का अधिकार हो जाने के उपरान्त हिरण्यगर्भ ने अपने मन्त्री से पूछा--

"मन्त्रि! हमारे क़िले में आग किसने लगा दी?"

मन्त्री—"महाराज, मेघवर्ण नाम का कौआ अपने परिवार सहित नहीं दिखाई देता। अतः प्रतीत होता है कि उसी ने किले में आग लगाई।"

हिरण्यगर्भ—"इसमें किसी का भी अपराध नहीं। दैव ही हमारे प्रतिकूल था।"

मन्त्री—"राजन्, बुरी दशा प्राप्त करके भाग्य की निन्दा करना मूर्खता है। अपने कर्मों के दोष को कोई भी बुरा नहीं कहता। एक बार एक कछुए ने भी इसी प्रकार कहा था।"

राजा—वह क्या कथा है?

मन्त्री—सुनो।

२.

मित्रों का कहा मानो

सुहृदां हितकामानां यो वाक्यं नाभिनन्दति।

. . . .

जो कल्याण चाहने वाले मित्रों की सलाह नहीं सुनते वे नष्ट हो जाते हैं।

. . . .

मगध देश में फुल्लोत्पल नाम के तालाब में संकट और विकट नाम के दो हंस रहते थे। इनका कम्बुग्रीव नाम का एक कछुआ मित्र भी उसी सरोवर में रहता था। प्रायः धीवरों के आने की सूचना हंस कछुए को पहुँचा दिया करते। इस भाँति कछुआ कठिन समय में बच जाता था।

एक दिन कई धीवर उसी तालाब के पास से जा रहे थे। पानी में खेलती हुई मछलियों को देखकर वे वहीं रुक गए। मछलियों को मोटा-ताजा देखकर उन्होंने अगले दिन वहीं आने का निश्चय किया। एक ने बल देते हुए कहा—

"कल प्रातःकाल हम अवश्य ही यहाँ की मछलियों और कछुओं को पकड़ेंगे।"

संकट और विकट ने यही समाचार कछुए और मछलियों को सुना दिया। कछुआ सुनकर बहुत भयभीत हुआ और रक्षा के उपाय सोचने लगा। वह हंसों से बोला—

"मित्रो, तुमने तो धीवरों की बातें अपने कानों सुनी हैं। अब तुम्हीं कोई उपाय बताओ। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है मानो मेरा काल ही सामने खड़ा है।"

हंस बोले—इन धीवरों को कहने भी दो। प्रातःकाल जैसा योग्य समझा जाएगा किया जाएगा। अगर तुम्हें मरना ही नहीं होगा तो धीवर क्या, बलवान से बलवान भी तुम्हारा बालबांका नहीं कर सकता।

कछुआ—मित्रो, ऐसा न कहो। इन बातों का जो परिणाम मैंने देखा है वह मैं सुनाता हूँ।

३.

भविष्य का विचार करो

"यद्भविष्यो विनश्यति"

. . . .

"जो होगा सो होगा ही" यह विश्वास रखने वाला नष्ट हो जाता है।

. . . .

आज से कुछ वर्ष पूर्व इसी सरोवरमें अनागत विधाता (आपत्ति आने से पूर्व ही निराकरण करने वाली) प्रत्युत्पन्नमति (समय देखकर कार्य करने वाली) और यद्भविष्य (होनहार को अटल मानने वाली) नाम की मछलियाँ रहती थीं।

एक दिन आज की ही भाँति कई धीवर यहाँ आए और खड़े होकर विचार करने लगे कि कल आकर यहाँ मछलियाँ पकड़ेंगे।

धीवरों की बातें सुनकर अनागत विधाता तो किसी प्रकार दूसरे तालाब में चली गई और अपने प्राण बचाए।

प्रत्युत्पन्नमति ने विचार किया कि यह कोई निश्चित तो है ही नहीं कि धीवर कल अवश्य आएँगे। अतः सरोवर नहीं छोड़ना चाहिए। समय पर जैसा उचित हो करना आवश्यक है।

तीसरी यद्भविष्य विचार करने लगी—इस तरह की दौड़-धूप में क्या रखा है ? यदि कल मुझे मरना ही होगा तो कोई बचा नहीं सकता। यदि जीवित रहना है तो कोई क्या खाकर मारेगा ? भाग्य से मैं क्या, कोई भी नहीं लड़ सकता।

तीनों के विचार भिन्न थे अतः उनके रक्षा के उपाय भी भिन्न थे।

अगले दिन प्रातःकाल धीवर उसी सरोवर पर जाल लेकर आए। अनागत विधाता तो पहले ही जा चुकी थी। प्रत्युत्पन्नमति जब पकड़ी गई तो उसने अपने को मृत दिखाया। धीवर ने उसे जाल से खोलकर एक ओर रख दिया। वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उछली और पानी में पहुँच गई। अब वह गहरे पानी में पहुँच चुकी थी। यद्भविष्य ने बचने का कोई भी विचार नहीं किया। अतः वह मारी गई।

× × × ×

कछुआ—अतएव मैं कहता हूँ कि हमें शीघ्र ही इस सरोवर को छोड़ देना चाहिए।

हंस बोले—आप जल की भांति पृथ्वी पर तो चल नहीं सकते फिर यह किस भांति सम्भव है।

कछुआ—कोई ऐसा उपाय सोचिए, जिससे कि मैं आकाश-मार्ग से ही आपके साथ जा सकूँ।

हंस—वह कौन सा उपाय है ?

कछुआ—आप लोग एक लकड़ी अपने मुँह में ले लें; मैं उसे

बीच से अपने मुंह से पकड़ लूँगा। इस भांति हम तीनों ही आकाश-मार्ग के द्वारा दूसरे तालाब में पहुँच जाएँगे।

हंस—भाई, उपाय के साथ-साथ उसकी हानियों पर भी विचार कर लेना चाहिए। नहीं तो कहीं हमें भी बगुले की भांति न पछताना पड़े।

कछुआ—वह कैसे ?

हंस—

४.

उपाय के साथ अपाय भी सोचो

उपायं चिन्तयन्प्राज्ञो ह्यपायमपि चिन्तयेत् ।

. . . .

बुद्धिमान् को चाहिए कि उपाय के साथ ही उससे सम्बन्धित दुष्परिणामों का भी विचार करले।

. . . .

उत्तर दिशा में गृध्रकूट नाम का एक बड़ा भारी पीपल का वृक्ष है। उस पर किसी समय बहुत से बकुले रहते थे। वृक्ष के नीचे एक सांप भी रहता था जो सदा उनके बच्चों को खा जाता था। बच्चों की मृत्यु पर वह बकुले विलाप करते थे। उनके विलाप को सुनकर एक बकुले ने उन्हें सलाह दी कि तुम मछलियां पकड़कर नेवले के बिल से लेकर सर्प के बिल तक उनकी पंक्ति बना दो। इस भांति नेवला उन्हें खाता हुआ सर्प के बिल तक आयेगा और सर्प को भी मार डालेगा।

बकुलों ने ऐसा ही किया। नेवला मछलियों को खाता हुआ आया और उसने सर्प को भी मार डाला।

परन्तु अगले दिन नेवले ने जब पीपल पर बकशावकों का कोलाहल सुना तो उन्हें भी मारकर खा लिया।

हंस –इसीलिये हम कहते हैं कि जब उपाय सोचे तो उसकी हानियाँ भी सोच लेवे। इस भांति तुम्हें आकाश में उड़ता देखकर लोग तुम्हारी हँसी उड़ायेंगे। तब तुम बोलोगे और बोलते ही नीचे गिर पड़ोगे।

कछुआ मुस्कराकर बोला—मैं इतना मूर्ख थोड़े ही हूँ। कहने वाले जो चाहें कहें, मैं कुछ भी उत्तर नहीं दूँगा।

हंसों ने कछुए को बहुत समझाया। पर जब कछुआ नहीं माना तो विवश होकर वे उसे साथ लेकर उड़ चले। मार्ग में उन्हें एक ग्वालों की टोली मिली। कछुए को इस भांति आकाश में जाता देखकर उन्हें कौतूहल हुआ और वे इनके पीछे भागने लगे।

एक ग्वाला बोला—यदि यह गिर पड़े तो मैं इसे पकाकर खाजाऊँ।

दूसरा—मैं भूनकर खा जाऊँ।

तीसरा—मैं आज बिरादरी वालों को दावत दूँ।

चौथा—मैं कच्चा ही खा जाऊँ।

ग्वालों की इन बातों को सुनकर कछुए को क्रोध आगया। वह गुस्से में भरकर बोला—

"तुम सब खाक खाओ।"

इतना कहना था कि वहीं गिर पड़ा और मर गया।

× × × ×

हिरण्यगर्भ का मन्त्री बोला—

"महाराज, मैं इसी कारण कहता था कि जो अपना कल्याण चाहने वालों की बात नहीं मानता वह विपत्ति में पड़ जाता है।"

उसी समय राजहंस के गुप्तचर बगुले ने आकर कहा—"स्वामी, मैंने पहले ही कहा था कि आप अपने क़िले का संशोधन कर लें। यह आग उसी दुष्ट कौवे ने लगाई है।"

राजा—आप लोग ठीक कहते हैं। शत्रु पर प्रेम से अथवा उपकारों के कारण विश्वास करने वाले का वही हाल होता है जो वृक्ष की शाखा पर सोने वाले मूर्ख का।

दूत—महाराज, जब कौआ हमारे क़िले में आग लगाकर चित्रवर्ण के पास पहुँचा तो उसने प्रसन्न होकर कहा—

मेघवर्ण को कर्पूरद्वीप का राज्य दे दो।

राजा ने आश्चर्य से पूछा—तो?

दूत—महाराज, तब चित्रवर्ण के मन्त्री गृद्ध ने कहा—यह कौआ इतने भारी पुरस्कार के योग्य नहीं है। सुनो मैं आपको एक कथा सुनाता हूँ।

५.

नीच न छोड़े नीचता

"नीचः श्लाध्यपदं प्राप्य स्वामिनं हन्तुमिच्छति।"

नीच व्यक्ति ऊँचा पद पाकर उपकारी स्वामी को ही मारना चाहता है।

गौतम ऋषि के आश्रम में एक महातप नाम के ऋषि तप करते थे। एक दिन उन्होंने देखा कि एक कौआ अपनी चोंच में किसी चूहे को ले जा रहा है। अचानक चूहा उसकी चोंच से छूट गया। महातप मुनि को उस पर दया आई। मुनि ने उसे उठा लिया। अन्न के दाने खिलाकर उन्होंने उसे पाला-पोसा।

एक दिन किसी बिल्ले की उस पर निगाह पड़ गई। जब वह उसे पकड़ने दौड़ा तो चूहा भागकर मुनि की गोद में आगया। मुनि को उस पर दया आई तो उन्होंने उसे चूहे से बिलाव बना दिया।

जंगली कुत्ते इस बिलाव को खाने दौड़ते थे। अतः मुनि ने उसे भी कुत्ता बना दिया। अब वह कुत्ता व्याघ्र से डरता था। अतः

मुनि ने उसे कुत्ते से व्याघ्र भी बना दिया।

प्रायः पड़ोसी मुनि इस व्याघ्र और महातप मुनि को देखकर कहा करते—

"इस मुनि ने इसे चूहे से व्याघ्र बना दिया।"

व्याघ्र सोचने लगा—यह तो बड़ा भारी कलंक है। जब तक यह मुनि जीवित है, मेरा यह कलंक धुल नहीं सकता। अतः इस मुनि को मार डालना चाहिये।

एक दिन अवसर पाकर जब व्याघ्र मुनि को मारने चला तो मुनि ने मुस्कराकर कहा—

"तू चूहा हो जा।" मुनि का कहना था कि वह व्याघ्र फिर से चूहा होगया।

× × × ×

मन्त्री ने आगे कहा—महाराज, केवल इतना ही नहीं। कौआ नीच जाति का है। नीच अपने दुष्कर्म तो करता ही है पर उनसे उसे हानि भी होती है। जैसे कि बगुला केकड़े के लोभ में मारा गया।

राजा बोला—वह कैसे ?

६.

मुख में राम बगल में छुरी

विषकुम्भं पयोमुखं

. . . .

ऐसे मित्र का विश्वास न करे जो मुँह का मीठा और दिल का बुरा हो ।

. . . .

मालव देश में पद्मगर्भ नाम का एक सरोवर था। एक दिन एक बूढ़ा बगुला उसके तट पर चिन्तित-सा बैठा था। एक केकड़े ने आकर पूछा--

"महाशय, आज आप अपना भोजन छोड़कर यहाँ क्यों बैठे हैं?

वह बोला--भाई, इस सरोवर की मछलियाँ ही मेरे जीवन का आधार हैं। आज जब मैं शहर में घूम रहा था, तब मैंने सुना कि कुछ धीवर आपस में बातें कर रहे थे और कह रहे थे कि कल हम पद्मगर्भ सरोवर पर जाकर मछलियाँ पकड़ेंगे। अब मैं सोच

रहा हूँ कि यदि वे धीवर इन मछलियों को ले जाएँगे तो मैं क्या खाऊँगा ?

बगुले की बात सुनकर मछलियाँ सोचने लगीं—इस आपत्ति के समय में तो यह भी हमारा मित्र है। अतः मछलियों ने बगुले से कहा—

"इस आपत्ति से बचने का क्या कोई उपाय भी है ?"

बगुला—इस समय तो केवल यही उपाय है कि इस तालाब को छोड़कर किसी दूसरे तालाब में चला जाए। यदि आप लोग चाहें तो मैं आप लोगों को पास वाले सरोवर में एक-एक करके ले जा सकता हूँ।

फिर क्या था ? प्रत्येक मछली सबसे पहले जाने के लिए तैयार होगई। बगुला बारी-बारी से सबको ले जाता और पास की झाड़ी में छिपकर उन्हें खा जाता। इसी भाँति उसने बहुत-सी मछलियों को खा लिया।

कुछ समय के उपरान्त केकड़े ने बगुले से कहा—भाई, सबको ले जाओगे। पर क्या हमें यहीं छोड़ जाओगे ?

बगुले का पेट तो खूब भर चुका था। पर फिर भी उसने सोचा—मैंने जीवन भर में कभी भी केकड़े का माँस नहीं खाया—आज सौभाग्य से यह मुझे प्राप्त हुआ है। यह विचारकर उसने केकड़े से कहा—

"अरे, भाई यह क्या कहते हो ? तुम्हें नहीं ले जाऊँगा तो और किसे ले जाऊँगा ?"

बगुले ने केकड़े को अपनी पीठ पर बिठा लिया और उस ओर चल दिया जहाँ उसने मछलियों को खाकर उनकी हड्डियां का ढेर लगाया हुआ था। हड्डियों के ढेर को देखकर केकड़े ने सारी स्थिति समझ ली। वह सोचने लगा—तब तक भय से डरना नहीं चाहिए जब तक वह आ न जाए। भय के उपस्थित हो जाने पर उसके निवारण के लिए यथोचित रूप से जैसा बन पड़े करना चाहिये।

केकड़े ने पीठ पर से ही बगुले की गर्दन पर अपने दाँत जमा दिए। उसने उसे ऐसा काटा कि वह वहीं मर गया।

× × × ×

दूत हिरण्यगर्भ से बोला—महाराज, इतनी कथा सुनकर मन्त्री गृद्ध आगे बोला—हे राजन्! इसीलिए मैं कहता हूँ कि नीच बड़ा बनने पर भी अपनी आदत नहीं छोड़ता। वह लोभ करता है और नष्ट हो जाता है।"

चित्रवर्ण—"मन्त्रिन्, मैंने विचार किया था कि मेघवर्ण को कर्पूरद्वीप का राजा बना दूँगा तो वह वहाँ के सुन्दर-सुन्दर पदार्थ हमारे लिए भेजा करेगा।"

मन्त्री हँसा और फिर बोला—"महाराज, जो भविष्य का विचार करके मन ही मन के लड्डू खाता है वह वर्त्तन फोड़ने वाले ब्राह्मण की भाँति दुःखी होता है।"

राजा ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—यह कथा कैसे है?

मन्त्री बोला—सुनो महाराज!

७.

शेखचिल्ली

अनागतवतीं चिन्तां कृत्वायस्तु प्रहृष्यति
स तिरस्कार माप्नोति......

. . . .

भविष्य के कल्पित-मनोरथों से ही जो व्यक्ति फूला
नहीं समाता उसे प्रायः नीचा देखना पड़ता है।

. . . .

देवीकोट नाम के नगर में देवशर्मा नाम का एक ब्राह्मण रहता था। यजमानों के दान से उसकी आजीविका चलती थी। संक्रान्ति के दिन उसे किसी यजमान ने एक सत्तुओं से भरा सकोरा दिया। उसे लेकर देवशर्मा अपने घर वापस चल दिया।

ज्येष्ठ, आषाढ़ की गर्मी थी। नीचे से मार्ग की गरम-गरम मिट्टी उसके पैर जला रही थी और ऊपर से जलता हुआ सूर्य उसके सिर पर आग बरसा रहा था। इस धूप से बचने के लिये उसने आस-पास छाया के लिये अपने नेत्र दौड़ाए। उसे एक ओर एक कुम्हार का घर दिखाई दिया। उसे तो मानो डूबते को घास का सहारा मिल गया। कुम्हार के घर के पास ही मिट्टी के बर्तनों

का बड़ा भारी ढेर लगा हुआ था। उसने अपना सत्तू का सकोरा वहाँ रखा और हाथ में डण्डा लेकर उसकी रखवाली करने लगा। वह बार-बार डन्डा हिला रहा था और सोच रहा था—

जब मैं इन सत्तुओं वाले सकोरे को बेचूँगा तो मुझे दस कौड़ियाँ प्राप्त होगीं। फिर मैं इसी कुम्हार से कौड़ियों के घड़े और सकोरे खरीद लूँगा। उनको बेचूँगा और इस तरह कई बार बेचने पर जब मेरे पास बहुत से पैसे हो जायेंगे तो मैं कपड़े की दुकान खोल लूँगा। इसी प्रकार एक दिन मैं देखते ही देखते लखपति हो जाऊँगा। लखपति होकर मैं चार शादियाँ करूँगा। उनमें से जो सबसे अधिक सुन्दर होगी, मैं उसे हृदय से प्रेम करूँगा। वे तीनों उस सुन्दर पत्नी से डाह करेंगी, आपस में लड़ेंगी और झगड़ेंगी। उस समय जब वह मेरे बार बार मना करने पर भी नहीं मानेंगी तब मैं उन्हें डन्डे से ऐसे पीटूँगा। इतना सोचकर ज्योंही उसने डन्डा चलाया, उसके सकोरे के साथ-साथ कुम्हार के बर्तन भी फूट गये।

डन्डे और बर्तनों की आवाज सुनकर कुम्हार वहाँ आया और पण्डितजी को फटकारते हुए बोला—

"कृपया आप हमारे घर फिर कभी न आइएगा।"

× × × ×

गृद्ध बोला—इसलिये मैं कहता हूँ कि कभी भी भविष्य का विचार करके प्रसन्न नहीं होना चाहिये।

चित्रवर्ण—तो मन्त्री तुम्हीं मुझे सलाह दो कि मैं क्या करूँ ?

मन्त्री—"राजन्, मेरी सलाह तो यह है कि अब आप हिरण्य-गर्भ से सन्धि कर लें। कारण यह है कि अब वर्षाऋतु प्रारम्भ होने वाली है। ऐसे समय में युद्ध होने पर हमें अपने देश जाना भी कठिन हो जायेगा। हमने विजय प्राप्त की। हमें यश भी मिला। अब यहाँ और अधिक समय ठहरना आपत्ति-जनक है। राजन्, हो सकता है कि आपको मेरा कहना कटु लगता हो। उसके लिये मैं क्षमा चाहता हूँ।"

राजा—"मन्त्रिन्, यह तो तुम्हारा कर्त्तव्य ही है। वह मन्त्री-पद के योग्य नहीं जो कटु अथवा मीठे के लोभ तथा भय में पड़कर राजा को अच्छी सम्मति न दे।"

मन्त्री—"महाराज, तो अवश्य ही आप सन्धि करलें। समान बल वालों में यदि सन्धि होजाए तो बहुत कल्याणकारी होती है। अन्यथा कभी-कभी दोनों ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं, जैसे—

५

सलाह से काम करो

सन्धिमिच्छेत् समेनापि

• • • •

तुल्य बलवाले से सन्धि कर लेना
ही श्रेयस्कर है।

• • • •

प्राचीन काल में सुन्द और उपसुन्द नाम के दो महान् बलशाली दैत्य हुए हैं। इन्हें त्रिलोकी पर एकछत्र राज्य करने की महान् अभिलाषा थी। अतः इन्होंने शंकर भगवान् की तपस्या प्रारम्भ कर दी। भगवान् आशुतोष शंकर इन दोनों की तपस्या से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दोनों को दर्शन दिए और कहा—

"दैत्यो, मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ। तुम जो वरदान चाहो माँग लो।"

सरस्वती की कृपा से वे दैत्य जो कुछ वरदान माँगना चाहते थे न माँग पाए। अपितु उन्होंने कहा—

"भगवान्, यदि आप प्रसन्न हैं तो हमें अपनी पार्वती वरदान में दे दीजिए।"

शंकर भगवान् के क्रोध की सीमा न रही। परन्तु वचन-बद्ध होने के करण उन्होंने उन दोनों को पार्वती सौंप दी।

पार्वती के अनुपम दैवी सौन्दर्य को देखकर दोनों उनके रूप पर लट्टू होगए। दोनों ने 'यह मेरी है' 'यह मेरी है' कह-कर शोर मचाना प्रारम्भ कर दिया।

दोनों को इस भाँति लड़ते देखकर शंकर भगवान् ने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया और उनकी ओर चल दिए। वृद्ध को अपनी ओर आते देखकर दोनों उसे मध्यस्थ बनाने के लिए बोले—

"ब्राह्मण देवता, कृपया हमारी बात सुनें !"

ब्राह्मण—"कहो भाई, तुम तो ऐसे प्रतीत होते हो जैसे लड़ने को उतारू हो।"

पहिला दैत्य—"महाराज, मैंने इस सुन्दरी को तप करके प्राप्त किया है। अतः यह मेरी है।"

दूसरा दैत्य—"जी नहीं, मैंने इससे अधिक तप किया है अतः यह मेरी है।"

ब्राह्मण—"भाई, तुम दोनों ने साथ-साथ तप किया है। अब यह निर्णय कठिन है कि किसने अधिक तप किया है। अतः अब आप लोग परस्पर युद्ध करें। इस तरह जो अधिक बलवान् हो उसे पार्वती मिल जाए।"

फिर क्या था ? दोनों ने अपनी-अपनी गदा सम्भाल ली और लड़ने लगे। भगवान् शंकर इन दोनों की पापमय प्रवृत्ति को देखकर

मुस्करा रहे थे। इतने में ही दोनों एक-दूसरे के असह्य वार से घायल होकर सदा के लिए सो गए।

भगवान् शंकर अपनी पार्वती को लेकर पुनः हिमालय की ओर बढ़ चले।

× × × ×

मन्त्री—"अतएव मैं कहता हूँ कि श्रीमान् उनसे मैत्री कर लें।"

हिरण्यगर्भ का दूत आगे बोला—"महाराज, इसी भाँति चित्रवर्ण के मन्त्री गृद्ध ने बार-बार चित्रवर्ण को समझाया।"

दूत के मुँह से शत्रुपक्ष का समाचार सुनकर हिरण्यगर्भ अपने मन्त्री से बोला—

"मन्त्रिन्, तुम्हारी कैसी सलाह है। हमें चित्रवर्ण से सन्धि करनी चाहिए अथवा नहीं।"

मन्त्री—"महाराज ! चित्रवर्ण इस समय विजयगर्व में फूला हुआ है। अतः वह सीधी तरह से सन्धि के लिए प्रस्तुत न होगा।"

हिरण्यगर्भ—"तो क्या किया जाए ?"

मन्त्री—"महाराज, सिंहलद्वीप का महाबल नाम का सारस आपका परम मित्र है। आप उसे सूचना दें कि वह चित्रवर्ण पर चढ़ाई कर दे। इस भाँति बराबर का शत्रु पाकर चित्रवर्ण स्वयं आपसे सन्धि करने आएगा।"

यह सुनकर राजा हिरण्यगर्भ ने दूत बगुले को महाबल सारस

के पास पत्र देकर भेज दिया और चित्रवर्ण के लिए दूसरे गुप्तचर नियुक्त कर दिये।"

× × × ×

मन्त्री के मुँह से सन्धि की बात सुनकर चित्रवर्ण ने मेघवर्ण को बुलाकर पूछा--

"मेघवर्ण! हिरण्यगर्भ कैसा राजा है? उसका मन्त्री कैसा है?

मेघवर्ण—"महाराज, हिरण्यगर्भ तो दूसरा ही युधिष्ठिर है। उसके मन्त्री जैसा तो मैंने अपने जीवन में देखा ही नहीं।"

चित्रवर्ण—"यदि ऐसा है तो तूने उसे ठग किस प्रकार लिया?"

मेघवर्ण—"महाराज, विश्वास दिलाकर तो प्रत्येक को सहज में ही ठगा जा सकता है। अपनी गोद में सुलाकर यदि किसी को मार दिया जाए तो उसमें क्या बहादुरी? हाँ, उस चतुर मन्त्री ने तो मुझे पहले ही पहचान लिया था। किन्तु हिरण्यगर्भ बड़ा ही सज्जन है। वह ठगा गया। नीति कहती है कि अपने जैसा सज्जन प्रत्येक को नहीं समझना चाहिए। ऐसा करने पर जो होता है वह मैं सुनाता हूँ।"

९.

धूर्तों का चक्कर

आत्मौपम्येन यो वेत्ति दुर्जनं सत्य वादिनं,
स सदा वञ्च्यते धूर्तैः..............।

. . . .

जो दुर्जनों को भी अपने ही समान सत्यवादी समझता है, वह धूर्तों के हथकण्डों का शिकार बन जाता है।

. . . .

महर्षि गौतम के वन में एक ब्राह्मण रहता था। उसने एक बार यज्ञ करने का विचार किया। अतः वह यज्ञ की सामग्री लेने नगर गया। वहाँ उसने यज्ञ की अन्यान्य सामग्री के साथ-साथ बलि देने के लिये एक बकरा भी लिया। बकरे को कन्धे पर लाद-कर वह आश्रम की ओर चल दिया।

मार्ग में उसे तीन धूर्तों ने देखा। बकरे को देखकर उनके मुँह में पानी आगया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि जिस भाँति भी

हो सकेगा, हम इस ब्राह्मण से यह बकरा अवश्य लेलेंगे। यह निश्चय करके तीनों एक-एक कोस के अन्तर पर खड़े हो गये। ज्योंही वह ब्राह्मण एक धूर्त के पास से बकर को कन्धे पर लादे निकला, धूर्त बोला—

"ब्राह्मण देवता, कहाँ से आ रहे हो ?"

ब्राह्मण—"नगर से आ रहा हूँ।"

धूर्त—इस कुत्ते को कन्धे पर लादकर कहाँ ले जा रहे हो ?"

ब्राह्मण—"कुत्ता ! नहीं भाई, यह कुत्ता नहीं; बकरा है।"

इतना कह ब्राह्मण आगे बढ़ चला।

धूर्त—"हमारा क्या ! कुत्ते को ही लादकर ले जाओ।"

ब्राह्मण अभी लगभग दो मील ही चला होगा कि एक दूसरा धूर्त मिला।

धूर्त—"पण्डितजी ! कहाँ जा रहे हो ?"

ब्राह्मण—"अपने आश्रम जा रहा हूँ।"

धूर्त ने आश्चर्य से पूछा—अरे ! तुमने इस कुत्ते को अपने कन्धे पर क्यों लाद रखा है ?

ब्राह्मण—"कुत्ता !" इतना कहकर उसने उसे पृथ्वी पर खड़ा किया और ध्यान से देखकर फिर आगे चलता बना। ब्राह्मण सोचता जा रहा था—क्या यह बकरा नहीं ? कुत्ता भी क्या ऐसा ही होता है ? पर कुत्ते की तो पूँछ काफ़ी लम्बी होती है ? हो सकता है यह किसी नई जाति का कुत्ता हो ? ब्राह्मण ने फिर ध्यान

से देखा—पर यह सोचकर कि कुछ भी हो यह कुत्ता नहीं हो सकता। ये लोग न जाने क्यों कुत्ता कहते हैं, आगे चल दिया।

कौआ कुछ ठहरकर बोला—"ठीक भी है, दुष्टों की बातों में आकर सज्जन की बुद्धि फिर जाती है।"

राजा बोला—"कैसे?"

कौआ बोला—

१०.

संगति का असर

मतिर्दोलायते सत्यं सतामपि खलोक्तिभिः

. . . .

सज्जन पुरुषों की भी बुद्धि दुष्टों की छल-
भरी बातों में आकर चञ्चल हो जाती है।

. . . .

किसी वन में मदोत्कट नाम का सिंह रहता था। उसके तीन सेवक थे। जिनमें एक कौआ, एक व्याघ्र और एक गीदड़ था। ये सारे वन में घूम-फिरकर अपने राजा को वन का समाचार सुनाया करते थे। यदि कोई नया प्राणी वन में आता तो सबसे पहले ये ही उससे मिलते।

एक समय तीनों वन में घूम रहे थे कि उन्हें एक ऊँट मिला। कौए ने उच्च स्वर में ऊँट से कहा—

"ऐ ऊँट, तू किस की आज्ञा से इस वन में फिर रहा है?"

ऊँट ने अपना सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। ऊँट की दर्द-भरी कहानी सुनकर तीनों को उस पर दया आई और वे उसे सिंह के पास ले गए। तीनों की प्रार्थना पर सिंह ने ऊँट को अभय-

दान दिया। उस दिन से ऊँट भी सिंह के सेवकों में से एक होगया।

एक समय वर्षा अधिक होने के कारण तीनों सेवकों को कुछ खाने को नहीं मिला। सिंह की भी एक बलवान हाथी से मुठभेड़ हो गई थी। सिंह ने उसे मार तो दिया पर हाथी ने भी उसे कम चोटें न दी थीं। अतः वह भी आस-पास जाकर आहार खोजने में असमर्थ था। सबने बहुत प्रयत्न किया, पर किसी प्रकार सफलता नहीं मिली। बहुत संतप्त होकर कौए ने व्याघ्र से कहा—

"मित्र, इस कांटे खाने वाले ऊँट से हमें क्या लाभ ? इसे मार-कर क्यों न खा लिया जाए ?"

व्याघ्र—"मूर्ख, जानते नहीं हो, महाराज ने इसे अभय प्रदान किया हुआ है।

गीदड़—"इन बातों में क्या रखा है ? भूख से व्याकुल होकर प्राणी क्या नहीं कर लेता ? भूखी होने पर स्त्री अपने पुत्र का त्याग कर देती है। भूखी होने पर सर्पिणी अपने पुत्रों को खा जाती है। फिर भूखा, भयभीत, पागल, थका हुआ, क्रोधी और लोभी प्राणी तो हर एक पाप करने पर तुल जाता है।"

आपस में सलाह करके तीनों मदोत्कट सिंह के पास गए।

सिंह ने पूछा—"क्यों ! आज कहीं कुछ प्राप्त हुआ ?"

कौआ—"महाराज, बहुत खोजा पर कुछ भी नहीं मिला।"

चिन्तित होकर सिंह बोला—

"अब हम लोग किस भांति जीवित रह सकेंगे ?"

कौआ—"परोसी हुई थाली को छोड़कर बैठे रहने के कारण आज हमारी यह हालत हुई ।"

सिंह—"तुम्हारा क्या तात्पर्य है ? क्या कोई भोजन हमारे पास है ?

कौए ने सिंह के कान में कहा—"चित्रकर्ण ।"

सिंह—"यह कभी भी नहीं हो सकता । हमने चित्रकर्ण को अभयदान दिया हुआ है । अभयदान से बढ़कर तो गौदान अथवा अन्नदान भी श्रेयस्कर नहीं । मैं उसे कभी भी नहीं मार सकता ।"

कौआ—"श्रीमान् जी ! आप चिन्ता क्यों करते हैं ? आप उस की हत्या न करें । वह स्वयं आपके लिए अपना शरीर समर्पित करेगा ।"

सिंह शान्त हो गया । कौआ अगले दिन समय पाकर सब साथियों को लेकर सिंह के सम्मुख उपस्थित हुआ ।

कौआ—"महाराज, कहीं कुछ भी खोजे नहीं मिलता । आप इस भाँति कब तक भूखे रहेंगे । अब तो आप मुझे ही खालें । अन्यथा आपकी दया से पला हुआ यह शरीर फिर कब काम आएगा ?"

सिंह—"भाई, मैं स्वयं मर सकता हूँ, पर कभी ऐसा नहीं कर सकता ।"

कौए के बाद गीदड़ और गीदड़ के बाद व्याघ्र ने ऐसा ही कहा । अपनत्व दिखाने की इच्छा से चित्रकर्ण (ऊँट) ने भी उसी

भाँति कहा। उसके कहते ही व्याघ्र ने उसे मार डाला और सबने मिलकर खा लिया।

× × × ×

बस, ठीक इसी भाँति धूर्तों की बात सुनकर उस ब्राह्मण के मस्तिष्क में भी भ्रम उत्पन्न हो गया।

वह अभी थोड़ी दूर ही और चल पाया था कि उसे तीसरा ठग भी मिल गया। उसने भी हँसते हुए कहा—

"पण्डितजी, इस कुत्ते को कहाँ ले जा रहे हो ?"

तीसरे धूर्त की बात सुनकर ब्राह्मण को विश्वास होगया कि हो न हो यह कुत्ता ही है। दुकानदार ने मुझे ठग लिया। अब तो मैं अपवित्र हो गया। ब्राह्मण ने बकरे को वहीं मार्ग पर छोड़ दिया और स्वयं स्नान करने चल दिया।

× × × ×

मेघवर्ण बोला—"इसीलिए मैं कहता हूँ कि अपने समान ही दूसरों को भी सज्जन समझने वाला व्यक्ति धूर्तों से ठगा जाता है।

राजा—परन्तु मेघवर्ण, तू इतने दिनों तक शत्रुओं के किले में रहा किस तरह ? तुझे उन्होंने कुछ भी कष्ट नहीं दिए।

मेघवर्ण—"महाराज, जिससे कार्य निकालना होता है उसके लिए सब कुछ सहा जाता है। लोग जलाने वाले ईंधन को सिर पर ढोया करते हैं। चतुर व्यक्ति तो अपनी कार्य सिद्धि के लिये शत्रुओं को भी कन्धों पर ढोता है। जैसे बूढ़े सर्प ने मेंढकों को कन्धों पर ढोया।

११.

जैसा समय वैसा काम

स्कन्धेनापि वहेच्छत्रून् कार्यमासाद्य बुद्धिमान् ।

. . . .

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि काम पड़ने पर
शत्रु का भी आदर कर ले ।

. . . .

किसी पुरानी फुलवारी में मन्दविष नाम का सर्प रहता था। वह बहुत वृद्ध था, अतः निर्बल होने के कारण वह अपना भोजन तक एकत्रित नहीं कर पाता था। एक दिन मन्दविष नदी के किनारे सुस्त-सा पड़ा था। उसे एक मेंढक ने देख लिया। कुछ समय विचार करने के उपरान्त उसने दूर से ही पूछा—

"सर्प ! आज तू अपना भोजन क्यों नहीं खोज रहा ?"

सर्प—"भाई, तुम अपना काम करो। मुझ मन्द-भाग्य के विषय में पूछकर क्या लोगे ?"

अब मेंढक की उत्सुकता और बढ़ी और आग्रह करते हुए उसने कहा—

"नहीं भाई, तुम्हें यह सब बताना ही पड़ेगा।"

सर्प—"अगर तुम नहीं मानते तो सुनो—"

ब्रह्मपुर नाम के नगर में कौन्डिन्य नाम का एक तपस्वी ब्राह्मण रहता है। वह महान् ब्रह्मनिष्ठ और वेदपाठी है। एक दिन उसका बीस वर्षीय नवयुवक पुत्र मेरे पास से निकला। दुर्भाग्यवश मैंने अपने कठोर स्वभाव के कारण उसके सुशील नामक पुत्र को डस लिया।

पुत्र के निधन का समाचार सुनकर कौण्डिन्य अपने आश्रम की ओर भागा हुआ आया। अपने पुत्र के मृत शरीर को देखकर वह शोक से मूर्छित हो गया। सुशील की मृत्यु का समाचार समस्त ब्रह्मपुर में शीघ्र ही फैल गया। कौण्डिन्य के भाई-बन्धु वहाँ एकत्रित हो गए।

कहा भी है—

उत्सवे व्यसने युद्धे दुर्भिक्षे राष्ट्र विप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च य स्तिष्ठति स बान्धवः॥

उत्सव के समय, दुःख के समय, युद्ध के समय, अकाल पड़ने पर, राष्ट्र में उपद्रव होने के समय, कचहरी और श्मशान में जो साथ देता है वही बन्धु है।

अपने बन्धु-बान्धवों को एकत्रित देखकर कौण्डिन्य और जोर-जोर से विलाप करने लगा। उसे इस भाँति विलाप करते देख कपिल नाम के एक गृहस्थी ने समझाते हुए कहा—

"कौण्डिन्य, इस अनित्य संसार में सदा रहने वाला कौन है? बालक के उत्पन्न होते ही उसकी मृत्यु उसके साथ हो लेती है।

इस संसार में अनेकों बड़े-बड़े राजा-महाराजा उत्पन्न हुए, जिनके पास कई अक्षौहिणी सेना थी। परन्तु आज उनका पता भी नहीं। जीवन के बढ़ते हुए क्षण उसे मृत्यु की ओर ही तो ले जाते हैं। यहाँ तक कि जीवन का प्रत्येक क्षण जीवन की समाप्ति का द्योतक है।"

कपिल ने इसी भाँति कौण्डिन्य को बार बार समझाया। कपिल के उपदेशों से वह इतना प्रभावित हुआ कि वन जाने को प्रस्तुत हो गया समय देखकर कपिल ने पुनः आग्रह किया—

"कौण्डिन्य ! वन जाने से क्या लाभ ? लोभ-मोह में ग्रसित पुरुषों के लिए तो वन जाना कोई लाभ नहीं देता। उन्हें वहाँ भी लोभ-मोह सताया करते हैं। जिसे इन लोभमोहादि से निवृत्ति है उसके लिए घर ही वन है।"

कौण्डिन्य—"आपका कहना सत्य है।"

कुछ समय विचारकर फिर कौण्डिन्य बोला—"हे पुत्र-घाती सर्प, मैं तुझे शाप देता हूँ कि तुझ पर मेंढक सवारी करेंगे।"

कपिल के उपदेशों से वैराग्य वश होकर कौण्डिन्य ने संन्यास ले लिया। उस दिन से मैं यहीं पर मेंढकों को सवारी देने के लिए रहता हूँ।"

यह सारा वृत्तान्त मेंढक ने अपने राजा को सुनाया। वह अपने साथियों को लेकर सर्प पर सवार होगया। सर्प भी विचित्र चाल से सैर कराने लगा। अगले दिन सर्प धीमी चाल से चलने

लगा। उसे इस भाँति धीरे-धीरे चलते देखकर मेंढकों का स्वामी बोला—

"सर्प, आज तुम धीरे-धीरे क्यों चल रहे हो?"

सर्प—"महाराज, खाने को कुछ मिलता ही नहीं।"

ऐसा सुनकर मेंढकों का स्वामी बोला—

"हमारी आज्ञा से तुम मेंढकों को खाया करो और हमें सैर कराया करो।"

फिर क्या था? सर्प ने धीरे-धीरे सब मेंढकों को खा लिया। यहाँ तक कि मेंढकों के स्वामी को भी खा गया।

× × × ×

यह कथा सुनाकर कौआ शान्त हो गया। मन्त्री बोला—"महाराज, समय पड़ने पर तो शत्रु को भी, चाहे वह कितना भी बुरा क्यों न हो, कन्धों तक पर बैठा लेना चाहिए। फिर यह राजा तो बड़ा धर्मात्मा एवं सुशील है। अतः इससे सन्धि करने में कोई भी हानि नहीं।"

उसी समय जम्बुद्वीप से एक गुप्तचर ने आकर चित्रवर्ण से निवेदन किया—"महाराज, सिंहलद्वीप के राजा सारस के सैनिकों ने जम्बुद्वीप को घेर लिया है।"

गृद्ध मन ही मन बोला—"सर्वज्ञ, तू कितना नीतिज्ञ है! तेरे लिए यह योग्य ही था।"

राजा क्रोध में भरकर बोला—

"मन्त्री, सेना को तैयार करो। मैं जम्बुद्वीप चलकर उस दुष्ट सारस को देखता हूँ।"

मन्त्री—"राजन्, मनुष्य को कभी भी बिना विचारे कोई काम नहीं करना चाहिए। इसी विषय में मैं आपको एक कथा सुनाता हूँ।"

१२.

बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताए

सहसा विदधीत न क्रियाम्

. . . .

कोई भी काम उतावलेपन में न करो,
तभी आपत्तियों से बचाव होगा ।

. . . .

उज्जयिनी नगरी में माधव नाम का एक ब्राह्मण रहता था । एक दिन उनकी पत्नी, पति से बच्चे की रक्षा के लिए कहकर स्वयं स्नान करने चली गई । वह पुत्र के पास बैठा उसकी देख-रेख कर रहा था कि उसके लिए कहीं से भोजन का निमन्त्रण आ गया ।

बेचारा माधव विचार में पड़ गया । यदि जाता हूँ तो बालक की रक्षा कौन करेगा । यदि नहीं जाता तो यजमान अवश्य ही किसी दूसरे ब्राह्मण को बुला लेगा । यजमान को आसन देकर वह घूम-फिर कर विचार करने लगा । बहुत विचार करने के उपरान्त उसे एक युक्ति सूझी । उसने पले हुए नेवले को बालक की रक्षा के लिए वहीं छोड़ दिया और स्वयं यजमान के साथ निमन्त्रण खाने के लिए चला गया ।

ब्राह्मण के जाने के पश्चात् एक सर्प बिल में से निकला और शिशु की ओर फन उठाकर देखने लगा। सर्प को देखते ही बालक की रक्षा करने के विचार से नेवला सर्प पर झपटा और उसने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए।

निमन्त्रण के उपरान्त ब्राह्मण अपने घर में घुसा। नेवले ने ब्राह्मण का द्वार पर ही स्वागत किया। सर्प का रक्त अब भी नेवले के मुँह पर लगा था। ब्राह्मण को वह दूर से ही दिखाई दे गया। उसने समझा कि नेवले ने पुत्र को खा लिया। फिर क्या था! उसने हाथ के डंडे से नेवले के प्राण ले लिए।

परन्तु घर में जाकर जब उसने बच्चे को खेलते हुए और सर्प के टुकड़े देखे तो उसे महान् पश्चात्ताप हुआ।

× × ×

मन्त्री बोला—"इसीलिए मैं कहता हूँ प्रत्येक कार्य विचारकर करना चाहिए।"

राजा—"मन्त्रिन् यदि तुम्हारा यही विचार है तो सन्धि करलें। पर क्या यह सम्भव है?"

मन्त्री—"महाराज आप चिन्ता न करें। हिरण्यगर्भ और उसका मन्त्री दोनों ही योग्य एवं विद्वान् हैं। विद्वान् लोग पारस्परिक कलह से सदा दूर रहा करते हैं।"

× × × ×

चित्रवर्ण और उसके मन्त्री की बातें हिरण्यगर्भ के दूत ने स्पष्ट रूप से अपने स्वामी को कह सुनाईं। और कहा—

"महाराज, चित्रवर्ण का मन्त्री आपसे सन्धि करने आ रहा है।"

हिरण्यगर्भ को कुछ शंका हुई। क्योंकि शत्रु की नीति का कुछ भी पता चलाना बहुत कठिन होता है। शत्रु सन्धि के बहाने ही नाश कर दिया करते हैं। परन्तु मन्त्री चक्रवाक ने हिरण्यगर्भ को समझाया।

हिरण्यगर्भ ने अपने मन्त्री समेत चित्रवर्ण के मन्त्री का स्वागत किया। दोनों पक्षों ने धर्म की प्रतिज्ञा करके परस्पर में सन्धि कर ली।

+ + + +

विष्णुशर्मा बोला—"राजपुत्रो, मैंने तुम्हें सन्धि-नीति भी सुना दी। अब आप लोग और क्या सुनना चाहते हैं?"

राजपुत्र—"गुरुदेव, आपकी कृपा से हमें नीति का समुचित ज्ञान हो गया है। अब हमें आप कृपा करके अपना शुभ आशीर्वाद दीजिए।"

विष्णुशर्मा—"ऐसा है तो आओ, हम लोग कल्याण के लिए अपने आराध्य देव से प्रार्थना करें। तदनन्तर तुम अपने राज्य में जाकर अपनी प्रजा का पालन-पोषण करो।"

॥ चतुर्थ खंड समाप्त ॥

❀ इति ❀